अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-38, अंक-6, 1-15 नवम्बर, 2014

गांधी का भारत
नेहरु का भारत

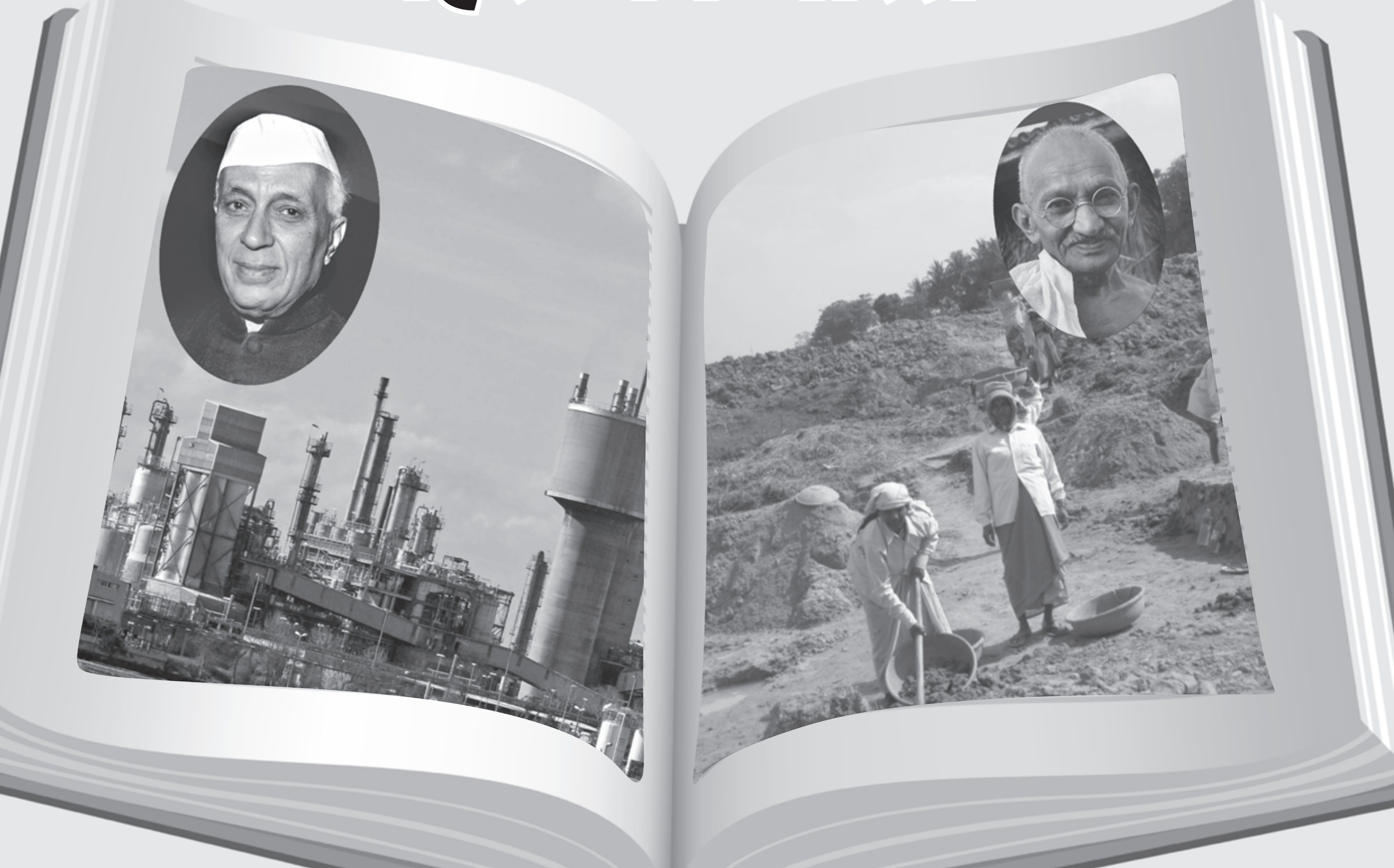

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य-अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 38, अंक : 06, 1-15 नवम्बर, 2014

संपादक मंडल

डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर 'कुसुम'**
बिमल कुमार **अशोक मोती**

संपादक *कार्यकारी संपादक*
बिमल कुमार **अशोक मोती**
मो. : 9235772595 **मो. : 7488387174**

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	पांच रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 38350201004310
IFSC No. UBIN-0538353

विज्ञापन दर

पूरा पृष्ठ	:	2000 रुपये
आधा पृष्ठ	:	1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ	:	500 रुपये

इस अंक में...

1. आखिरी वसीयतनामा... 2
2. गांधी व नेहरू : लक्ष्य एवं तंत्र... 3
3. गांधी का भारत बनाम नेहरू का भारत... 4
4. उद्योगवाद का अभिशाप... 6
5. गांधी और नेहरू गणनिरपेक्ष नहीं... 9
6. विनोबा की तीसरी शक्ति... 13
7. कौन है 'मोनिया'?... 16
8. गतिविधियां एवं समाचार... 18
9. गांधी का पांचवां पुत्र अस्पृश्यता... 19
10. कुमारन् आशान की कविताएं... 20

'सर्वोदय जगत' में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनके साथ सर्व सेवा संघ या संपादक मंडल का सहमत होना जरूरी नहीं है।

आखिरी वसीयतनामा

❑ महात्मा गांधी

देश का बँटवारा होते हुए भी, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा मुहैया किये गये साधनों के जरिये हिन्दुस्तान को आजादी मिल जाने के कारण मौजूदा स्वरूप वाली कांग्रेस का काम अब खतम हुआ—यानी प्रचार के वाहन और धारासभा की प्रवृत्ति चलाने वाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कसबों से भिन्न उसके सात लाख गाँवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आजादी हासिल करना अभी बाकी है। लोकशाही के मकसद की तरफ हिन्दुस्तान की प्रगति के दरमियान सैनिक सत्ता पर नागरिक सत्ता को प्रधानता देने की लड़ाई अनिवार्य है। कांग्रेस को हमें राजनीतिक पार्टियों और साम्प्रदायिक संस्थाओं के साथ की गंदी होड़ से बचाना चाहिए। इन और ऐसे ही दूसरे कारणों से अखिल भारत कांग्रेस कमेटी नीचे दिये हुए नियमों के मुताबिक अपनी मौजूदा संस्था को तोड़ने और लोक-सेवक-संघ के रूप में प्रकट होने का निश्चय करे। जरूरत के मुताबिक इन नियमों में फेरफार करने का इस संघ को अधिकार रहेगा।

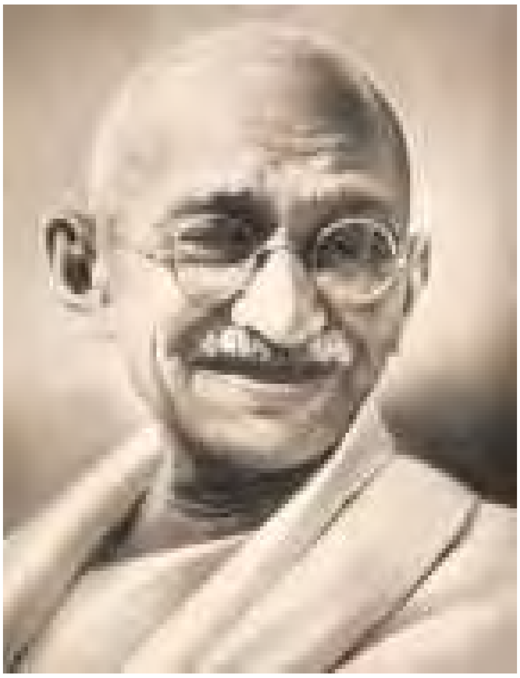

गाँव वाले या गाँव वालों के जैसी मनोवृत्ति वाले पाँच वयस्क पुरुषों या स्त्रियों की बनी हुई हरएक पंचायत एक इकाई बनेगी।

पास-पास की ऐसी हर दो पंचायतों की, उन्हीं में से चुने हुए एक नेता की रहनुमाई में, एक काम करने वाला दल बनेगा।

जब ऐसी 100 पंचायतें बन जायँ, तब पहले दरजे के पचास नेता अपने में से दूसरे दरजे का एक नेता चुनें और इस तरह पहले दरजे का नेता दूसरे दरजे के नेता के मातहत काम करे। दो सौ पंचायतों के ऐसे जोड़ कायम करना तब तक जारी रखा जाय, जब तक कि वे पूरे हिन्दुस्तान को न ढँक लें। और बाद में कायम की गयी पंचायतों का हरएक समूह पहले की तरह दूसरे दरजे का नेता चुनता जाय। दूसरे दरजे के नेता सारे हिन्दुस्तान के लिए सम्मिलित रीति से काम करें और अपने-अपने प्रदेशों में अलग-अलग काम करें। जब जरूरत महसूस हो, तब दूसरे दरजे के नेता अपने में से एक मुखिया चुनें, और वह मुखिया चुनने वाले चाहें तब तक सब समूहों को व्यवस्थित करके उनकी रहनुमाई करें। ❑

29-1-'48

संपादकीय

गांधी व नेहरू : लक्ष्य एवं तंत्र

भारत की आजादी के बाद नये भारत का निर्माण कैसे होगा, इस प्रश्न पर गांधीजी एवं पं. जवाहरलाल नेहरू के दृष्टिकोण में भिन्नता थी।

गांधीजी लोकसत्ता एवं ग्राम स्वराज्य के माध्यम से नये भारत का निर्माण करना चाहते थे। लेकिन इस दिशा में कार्य करने का उन्हें अवसर नहीं मिला।

दूसरी ओर नेहरूजी भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने तथा 17 वर्षों तक निर्विवाद नेता के रूप में उन्होंने भारत निर्माण के लिए नीतियों को बनाया तथा उनका क्रियान्वयन किया। भारत में आज जो नीतियां दीख रही हैं, वे उन्हीं नीतियों की निरन्तरता एवं प्रतिफलन हैं।

नेहरूजी योरोपीय देशों एवं सोवियत रूस में हुए विकास से प्रभावित थे। इन दोनों तरह के समाज निर्माण की प्रक्रिया में आर्थिक विकास का तंत्र निर्माण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। नेहरूजी ने भी समाज के निर्माण एवं व्यक्ति के निर्माण से अधिक महत्त्व आर्थिक विकास के तंत्र के निर्माण पर दिया।

योरोप में भी तथा सोवियत रूस में भी आर्थिक विकास का तंत्र शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था थी। इसी कारण आर्थिक व्यवस्था एवं राजनीतिक व्यवस्था दोनों शीर्ष केन्द्रमुखी होते चले गये। योरोप में लोकतंत्र के नाम पर तथा सोवियत रूस में समता के नाम पर जो व्यवस्थाएं बनीं, उन दोनों से लोक के अभिक्रम को बाहर कर दिया गया, लोक की सत्ता के निर्माण की सम्भावना को खत्म कर दिया गया।

उन व्यवस्थाओं में काम करने वाला व्यक्ति महज व्यवस्था के अन्दर एक पुर्जा मात्र था। वे राजनीतिक व आर्थिक व्यवस्थाएं, व्यक्तियों को एक पूर्वनिर्धारित रोल में काम करने के लिए विवश करती रहीं। उप-व्यवस्थाएं, एक बड़ी व्यापक व्यवस्था के रूप में काम करती रहीं।

व्यवस्थाओं की इन्हीं एकरूपताओं के कारण, एक समय बाद कारपोरेट पूंजीवाद एवं राज्य पूंजीवाद दोनों एक दिशा में बढ़ते गये। न केवल दोनों व्यवस्थाओं की संरचना समान थी, बल्कि दोनों के अन्दर की आर्थिक प्रक्रियाएं भी समान रहीं। दोनों में पूंजी का केन्द्रीकरण मजबूत होता गया। पूंजी के केन्द्रीकरण की प्रक्रिया के कारण ही छोटे कारीगर एवं लोक स्तर की आर्थिक व्यवस्थाओं से पूंजी का दोहन होकर केन्द्रीयकृत व्यवस्थाओं में जाने लगा। फलस्वरूप किसान, आदिवासी, छोटे कारीगर एवं हस्तशिल्प वाले लोग पूंजी से और संसाधनों से वंचित होते चले गये। जबकि आर्थिक विकास का लक्ष्य यही था कि इन वर्गों/तबकों को मजबूत बनाया जाये।

इस प्रकार आर्थिक विकास का जो तंत्र बना, वह आर्थिक विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधक ही नहीं, उसका विरोधी बनता चला गया। आजादी के बाद नव उपनिवेशवाद एवं आर्थिक साम्राज्यवाद को चुनौती देने का भी लक्ष्य था। किन्तु विकास के इस तंत्र ने अन्ततः नव उपनिवेशवाद एवं आर्थिक साम्राज्यवाद (पूंजीवादी बाजार का वैश्वीकरण) के साथ अपने को एकरूप कर दिया। सन् 1991 के बाद भारत में जो भी सरकारें बनीं, वे सभी इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाती चली गयीं। भाजपा की वर्तमान सरकार तो इस मार्ग पर सरपट दौड़ रही है।

इसी कारण हम कह सकते हैं कि नेहरू युग में आर्थिक विकास का जो तंत्र विकसित किया गया, वह अन्ततः लोक विरोधी, लोक आर्थिक व्यवस्थाओं को ध्वस्त करने वाला तथा वैश्विक आर्थिक साम्राज्यवाद का सहयोगी वाहक तंत्र बन गया। हमारी इच्छाओं के विरुद्ध तथा हमारे लक्ष्यों के विरुद्ध, हमारे बनाये तंत्र कैसे काम करने लगते हैं, यह इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

जो गांधी की परम्परा को मानते हैं, उन्हें आज भी इस चुनौती को स्वीकार करना होगा। यह सच है कि सन् 1947 की अपेक्षा यह कार्य आज कहीं अधिक कठिन हो गया है। लोकसत्ता के निर्माण का कार्य, लोक स्वामित्व के विचार को प्रतिष्ठित करने का कार्य तथा शासन-मुक्त, शोषण-मुक्त ग्राम स्वराज्य के अधिष्ठान के निर्माण का कार्य आज कहीं अधिक जरूरी है। आज चुनौती मानवता को और प्रकृति को बचाने की संयुक्त चुनौती है। आर्थिक विकास (?) के माध्यम से समाज का निर्माण नहीं होगा, बल्कि समाज व व्यक्ति निर्माण के माध्यम से आर्थिक विकास का रास्ता चुनना होगा।

सबसे पहला कार्य लोकसत्ता के निर्माण की सम्भावनाओं को प्रकट करना है। लोकसत्ता के निर्माण की सम्भावना, लोक-शक्ति के प्रकट होने से ही होगी। आज की परिस्थिति में, लोक-शक्ति के प्रकट होने का माध्यम लोक आंदोलन एवं वैकल्पिक रचना ही हो सकती है। लेकिन सावधानी यह रखनी होगी कि इस लोक आंदोलन का तंत्र तथा वैकल्पिक रचना का तंत्र भी शीर्ष केन्द्रमुखी श्रेणीबद्ध व्यवस्था न हो। अर्थात क्रांति का माध्यम भी स्वयं एक विकल्प प्रस्तुत कर सके। गांधी एवं नेहरू के लक्ष्य समान थे, किन्तु उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए माध्यम-निर्माण में भेद था। आज यह स्पष्ट हो गया है कि गांधीजी का विचार आदर्श ही नहीं, एकमात्र व्यावहारिक विचार था।

बिमल कुमार

दस्तावेज

गांधी का भारत
बनाम
नेहरू का भारत

गांधी और नेहरू के बीच का पत्राचार एक ऐतिहासिक पत्राचार है। आजादी प्राप्तिकाल की गांधी की बेचैनी स्पष्ट दीखती है। नेहरू के हाथ गांधी को नजरअंदाज करने का ही थोड़ा जो वक्त है सत्ता प्राप्ति की दौड़ में वह अपने मतभेद को सही ढंग से उजागर करने के भी पक्षधर नहीं हैं। गांधी की कल्पना का भारत 'गांव का भारत' है जबकि नेहरू की कल्पना का भारत 'शहर का भारत' है। गांधी ग्राम स्वावलम्बन के लिए 'ग्रामोद्योग' के किन्तु नेहरू 'भारी उद्योग' के पक्षधर हैं। विभिन्न तर्कों के आधार पर नेहरू एक तरफ गांधी के विचारों को काट भी रहे हैं तो दूसरी ओर यह भी बतलाने की कोशिश कर रहे हैं कि गांधी के मसले देश के लिए अहितकर हैं। देश में आजादी के बाद जनप्रतिनिधि ही इस मसले में निर्णय लेंगे। देश की वर्तमान स्थिति में इस पत्राचार का पुनर्पाठ बड़ा महत्त्वपूर्ण है ताकि हम गांधी और नेहरू के भारत की स्थिति का आंकलन कर सके और आज हम किस राष्ट्रवाद की ओर बढ़ रहे हैं, यह भी हम गहराई से समझ पायें। **–का. सं.**

चि. जवाहरलाल,

तुमको लिखने का तो कई दिनों से इरादा किया था, लेकिन आज ही उसका अमल कर सकता हूं। अंग्रेजी में लिखूं या हिन्दुस्तानी में, यह भी मेरे सामने सवाल रहा था। आखिर में मैंने हिन्दुस्तानी में ही लिखने को पसंद किया।

पहले बात तो हमारे बीच में जो बड़ा मतभेद हुआ है उसकी। अगर वह भेद सचमुच है तो लोगों को भी जानना चाहिए। क्यांकि उनको अँधेरे में रखने से हमारा स्वराज का काम रुकता है। मैंने कहा है कि 'हिन्द स्वराज' में मैंने लिखा है उस राज्य पद्धति पर मैं बिल्कुल कायम हूं। यह सिर्फ कहने की बात नहीं है लेकिन जो चीज मैंने 1908 साल में लिखी है उसी चीज का सत्य मैंने अनुभव से आज तक पाया है। आखिर में मैं एक ही उसे मानने वाला रह जाऊँ, उसका मुझको जरा-सा भी दुःख न होगा। क्योंकि मैं जैसे सत्य पाता हूं उसका मैं साक्षी बन सकता हूं। 'हिन्द स्वराज' मेरे सामने नहीं है। अच्छा है कि मैं उसी चित्र को आज अपनी भाषा में खींचूँ। पीछे वह चित्र 1908 जैसा ही है या नहीं उसकी मुझे दरकार न रहेगी, न तुम्हें रहनी चाहिए। आखिर में तो मैंने पहले क्या कहा था कि उसे सिद्ध करना नहीं है, आज मैं क्या कहता हूं वही जानना आवश्यक है। मैं यह मानता हूं कि अगर हिन्दुस्तान को सच्ची आजादी पानी है और हिन्दुस्तान के मारफत दुनिया को भी, तब आज

नेहरू ने गांधी के हिन्दी में लिखे गये पत्र का जवाब 9 अक्टूबर को अंग्रेजी में भेजा।

उन्होंने कहा कि सिर्फ दो दिनों के लिए अपने घर इलाहाबाद आये हैं और व्यस्त हैं; फिलहाल थोड़े में जवाब भेज रहे हैं।

"मेरी समझ से सवाल सत्य बनाम असत्य या अहिंसा बनाम हिंसा का नहीं है। हम मानते हैं, जैसे कि मानना चाहिए, कि सहयोग और शांतिपूर्ण तरीकों की तरफ बढ़ना चाहिए और हमारा लक्ष्य ऐसा समाज होना चाहिए जो उन दोनों चीजों को बढ़ावा दे। सारा सवाल तो यह है कि ऐसा समाज हासिल कैसे किया जाए और इस समाज के तत्त्व क्या हों। **मैं नहीं समझ पाता कि क्यों गांव अनिवार्यतः सत्य और अहिंसा की मूर्ति ही हो। गांव आमतौर पर बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा होता है और पिछड़े वातावरण में प्रगति नहीं की जा सकती। संकीर्ण मानस वाले लोगों के झूठे और हिंसक होने की सम्भावना ज्यादा है।"**

"मैंने बहुत साल पहले **'हिन्द स्वराज'** पढ़ा था, और अब उसकी सिर्फ एक धुँधली तस्वीर मेरे दिमाग में है, लेकिन मैंने इसे बीस साल पहले पढ़ा था तब भी **यह पुस्तक मुझे बिल्कुल अवास्तविक लगी थी।** उसे बाद से आपके लेखन व भाषणों में मैंने बहुत कुछ

नहीं तो कल देहातों में ही रहना होगा—झोपड़ियों में, महलों में नहीं। कई अब्ज आदमी शहरों में और महलों में सुख से और शांति से कभी नहीं रह सकते, न एक-दूसरे का खून करके, मायने हिंसा से, न झूठ से—यानी असत्य से। सिवाय इस जोड़ी के (यानी सत्य और अहिंसा) मनुष्य जाति का नाश ही है उसमें जरा-सा भी शक नहीं है। उस सत्य और अहिंसा का दर्शन हम देहातों की सादगी में ही कर सकते हैं। यह सादगी चरखों में और चरखों में जो चीज भरी है उसी पर निर्भर है। मुझे कोई डर नहीं है कि दुनिया उलटी ओर जा रही दिखती है। यों तो पतंगा जब अपने नाश की ओर जाता है तब सबसे ज्यादा चक्कर खाता है और चक्कर खाते-खाते जल जाता है। हो सकता है कि हिन्दुस्तान इस पतंगे के चक्कर में से न बच सके। मेरा फर्ज है कि आखिर दम तक उसमें से उसे और उसके मारफत जगत को बचाने की कोशिश करूं। मेरे कहने का निचोड़ यह है कि मनुष्य जीवन के लिए जितनी जरूरत की चीज है उस पर निजी काबू होना चाहिए—अगर न रहे तो व्यक्ति बच ही नहीं सकता। आखिर तो जगत व्यक्तियों का ही बना है। बिन्दु नहीं है तो समुद्र नहीं है। यह तो मैंने मोटी बात ही कही, कोई नयी बात नहीं की।

लेकिन **'हिन्द स्वराज'** में भी मैंने यह बात नहीं की है। आधुनिक शास्त्र की कदर करते हुए पुरानी बात को मैं आधुनिक शास्त्र की निगाह से देखता हूं तो पुरानी बात इस नये लिबास में मुझे बहुत मीठी लगती है। अगर ऐसा समझोगे कि मैं आज के देहातों की बात करता हूं तो मेरी बात नहीं समझोगे। मेरा देहात आज मेरी कल्पना में ही है। आखिर में तो हर एक मनुष्य अपनी कल्पना की दुनिया में ही रहता है। इस काल्पनिक देहात में देहाती जड़ नहीं होगा—शुद्ध चैतन्य होगा। वह गंदगी में, अँधेरे में जानवरों की तरह की जिन्दगी बसर नहीं करेगा। मर्द और औरत दोनों आजादी से रहेंगे और सारे जगत के साथ मुकाबला करने को तैयार रहेंगे। वहां न हैजा होगा, न मरकी होगी, न चेचक होंगे। कोई आलस्य में नहीं रह सकता है, न कोई ऐश-आराम में रहेगा। सबको शारीरिक मेहनत करनी होगी। इतनी चीज होते हुए भी मैं ऐसी बहुत-सी चीज का ख्याल करा सकता हूं जो बड़े पैमाने पर बनेगी। शायद रेलवे भी होगी, डाक-घर, तार-घर भी होंगे। क्या होगा, क्या नहीं उसका मुझे नहीं पता। न मुझको उसकी फिकर है। असली बात को मैं कायम कर सकूं तो आने की और रहने की खूबी रहेगी, और उसकी बात छोड़ दूं तो सब छोड़ देता हूं।

उस रोज जब हम आखिर के दिन वर्किंग कमेटी में बैठे थे तो ऐसा कुछ फैसला हुआ था कि इसी चीज को साफ करने के लिए वर्किंग कमेटी 2-3 दिन के लिए बैठेगी। बैठेगी तो मुझको अच्छा लगेगा, लेकिन न बैठे तब भी **मैं चाहता हूं कि हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह समझ लें। उसके दो सबब हैं। हमारा संबंध सिर्फ राजकारण का नहीं है। वह संबंध टूट भी नहीं सकता। इसलिए मैं चाहता हूं कि हम एक-दूसरे को राजकारण में भी भलीभांति समझें। दूसरा कारण यह है कि हम दोनों में से एक भी अपने को निकम्मा नहीं समझते हैं। हम दोनों हिन्दुस्तान की आजादी के लिए जिन्दा रहते हैं और उसी आजादी के लिए हमको मरना भी अच्छा लगेगा। हमें किसी की तारीफ की दरकार नहीं है। तारीफ हो या गालियां–एक ही चीज है। खिदमत में उसे कोई जगह ही नहीं है। अगर मैं 125 साल तक सेवा करते-करते जिन्दा रहने की इच्छा करता हूं तब भी मैं आखिर में बूढ़ा हूं और तुम मुकाबले में जवान हो। इसी कारण मैंने कहा है कि मेरे वारिस तुम हो। कम-से-कम उस वारिस को मैं समझ लूं और मैं क्या हूं वह भी वारिस समझ ले तो अच्छा ही है और मुझे चैन रहेगा।**

इस सबके बारे में अगर हमें मिलना चाहिए तो हमें मिलने का वक्त निकालना चाहिए। तुम बहुत काम कर रहे हो, स्वास्थ्य अच्छा रहता होगा। इन्दु ठीक होगी। (5 अक्टूबर, 1945) —बापू के आशीर्वाद!

ऐसा पाया है जो उस पुरानी स्थिति से आगे है और जिसमें आधुनिक प्रवृत्तियों का समालोचन है। इसलिए मुझे तो ताज्जुब हुआ जब आपने हमें बताया कि आपके दिमाग में अभी तक वही तस्वीर बरकरार है। जैसा कि आप जानते हैं, उसको अपनाना तो दूर, कांग्रेस ने उस तस्वीर पर कभी विचार नहीं किया है। आपने भी, सिवाय इसके छोटे-मोटे हिस्सों के, कभी कांग्रेस से इस तस्वीर को अपनाने के लिए नहीं कहा। आप ही फैसला करें कि क्या कांग्रेस के लिए ऐसे बुनियादी सवालों पर विचार करना ठीक होगा, जिनसे विभिन्न जीवन-दर्शनों का संबंध है। **मैं समझता हूं कि कांग्रेस जैसी संस्था को ऐसे मसलों पर तर्क में नहीं खो जाना चाहिए, जिनसे लोगों के दिमाग चकरा जाएं और वे वर्तमान स्थिति में कार्य होने की सामर्थ्य खो बैठें। इससे देश में कांग्रेस और दूसरों के बीच दूरी पैदा हो सकती है। अवश्य ही यह और दूसरे प्रश्न अंततः स्वाधीन भारत के प्रतिनिधियों द्वारा तय किए जाएंगे।**...हिन्द स्वराज को लिखे गए 38 साल हो गये हैं। शायद गलत दिशा में, पर तब से अब तक दुनिया पूरी तरह से बदल गयी है।...आपका कहना सही है कि दुनिया या उसका बड़ा हिस्सा, लगता है आत्मघात पर आमादा है। हो सकता है यह अनिवार्य परिणति हो उस कुत्सित बीज की जो सभ्यता के साथ बढ़ता रहा है। मुझे ऐसा ही लगता है। हमारी समस्या यह है कि अतीत और वर्तमान की अच्छाइयों को बनाए रखते हुए कैसे इस बुराई को खत्म करें। जाहिर है कि वर्तमान में भी अच्छाई है।''

''हमने खाना, कपड़ा, मकान, शिक्षा, सफाई इत्यादि में आत्मनिर्भरता जैसे लक्ष्य निर्धारित किए हैं, जो कि देश और हरेक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता होनी चाहिए। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए हमें पता करना चाहिए कि किस तरह उन्हें तेजी से हासिल किया जाए। मुझे यह भी लगता है कि यातायात के आधुनिक साधनों और दूसरी आधुनिक सुविधाओं को अनिवार्य रूप से बनाए रखना और विकसित करना चाहिए। उनको अपनए बगैर कोई रास्ता नहीं है। अगर ऐसा है तो कुछ मात्रा में भारी उद्योग रहेगा ही। उसका कहां तक एक विशुद्ध ग्रामीण समाज से मेल बैठेगा? **मैं स्वयं आशा करता हूं कि भारी या हल्के उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो और बिजली की शक्ति के विकास से अब ऐसा हो भी सकता है। अगर देश में दो प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं रहीं तो या तो उनके बीच संघर्ष होगा या उनमें से एक दूसरी को खा जायेंगी।''**

नेहरू के पत्र 9 अक्टूबर, 1945 में एक बहुत उल्लेखनीय तथ्य यह है कि कई तरह के तर्क देकर वह गांधी को बता रहे हैं कि जो मसला वह उठा बैठे हैं उस पर विचार करना न केवल देश के अहित में है बल्कि वह ऐसा मसला भी है जिस पर फैसला करने का अधिकार न उनको है और न किसी और को। स्वाधीनता मिलने के बाद ही देश के प्रतिनिधि इस पर कोई निर्णय लेने के अधिकारी होंगे। ❑

गांधी बनाम नेहरू

उद्योगवाद का अभिशाप

राष्ट्रीयकरण से दोष दूर नहीं होंगे

❑ महात्मा गांधी

पंडित नेहरू उद्योगीकरण चाहते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि उसका राष्ट्रीयकरण कर देने से वह पूंजीवाद के दोषों से मुक्त हो जायेगा। **मेरी अपनी राय है कि उद्योगवाद में ये दोष निहित हैं, और कितना भी राष्ट्रीयकरण क्यों न किया जाय उन दोषों को दूर नहीं किया जा सकता।...कारखानों की सभ्यता पर हम अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते, स्वावलंबी गांवों की बुनियाद पर ही वह किया जा सकता है...ग्रामीण आर्थिक रचना की जैसी मेरी कल्पना है उसमें शोषण बिलकुल समाप्त हो जाता है, और शोषण तो हिंसा का सार है। इसलिए अगर हमें अहिंसक बनना हो तो पहले ग्रामीण वृत्ति वाला बनना होगा।**...अहिंसा पर आधारित समाज गांव में बसे हुए समुदायों का ही हो सकता है जहां स्वैच्छिक सहयोग एक प्रतिष्ठित और शांतिमय जीवन की अनिवार्य शर्त है।

...किसी को भी भोजन और वस्त्र का अभाव नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, हरएक को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त काम मिलना चाहिए...(और यह आदर्श सबके लिए तभी प्राप्त हो सकता है जब) जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जरूरी उत्पादन के साधन जनता के नियंत्रण में हों। ये सबको मुक्त रूप से उपलब्ध होने चाहिए जैसे हवा और पानी है, दूसरों के शोषण के लिए इन्हें व्यापार का साधन नहीं बनाया जाना चाहिए।

मेरा स्पष्ट मत है और मैं उसे साफ-साफ कहता हूं कि बड़े पैमाने पर माल उत्पादन करने का पागलपन ही दुनिया की मौजूदा संकटमय स्थिति के लिए जिम्मेदार है। एक क्षण के लिए मान भी लिया जाय कि यंत्र मानव-समाज की सारी आवश्यकताएं पूरी कर सकते हैं, तो भी उसका यह परिणाम तो होगा ही कि उत्पादन कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में केन्द्रित हो जायेगा और इसलिए वितरण की योजना के लिए हमें द्रविड़ प्राणायाम करना पड़ेगा। दूसरी ओर यदि जिन क्षेत्रों में वस्तुओं की आवश्यकता है वहीं उनका उत्पादन हो और वहीं वितरण हो, तो वितरण का नियंत्रण अपने-आप हो जाता है। उसमें धोखाधड़ी के लिए कम गुंजाइश होती है और सट्टे के लिए तो बिलकुल नहीं।

...जब उत्पादन और उपभोग, दोनों किसी सीमित क्षेत्र में होते हैं, तो उत्पादन को अनिश्चित हद तक और किसी भी मूल्य पर बढ़ाने का लोभ फिर नहीं रह जाता। उस हालत में हमारी मौजूदा अर्थ-व्यवस्था से जो अनेक कठिनाइयां और समस्याएं पैदा होती हैं वे नहीं रह जायेंगी।

बड़े पैमाने के उत्पादन में उपभोक्ता की सच्ची जरूरतों का ध्यान नहीं रखा जाता। अगर बड़े पैमाने का उत्पादन अपने-आप में एक हितकारी वस्तु हो, तो उसे अनन्तगुना बढ़ सकना चाहिए। लेकिन यह निश्चित रूप से बताया जा सकता है कि बड़े पैमाने का उत्पादन अपने साथ अपनी मर्यादाएं लेकर चलता है। अगर दुनिया के समस्त देश बड़े पैमाने की उत्पादन-पद्धति को अपना लें, तो उनके माल के लिए बड़े बाजार नहीं मिलेंगे। उस स्थिति में बड़े पैमाने के उत्पादन को रुकना ही होगा।

यह तो आप देखते ही हैं कि ये राष्ट्र (यूरोप और अमेरिका) दुनिया की तथाकथित कमजोर या असंगठित जातियों का शोषण करते हैं। यदि एक बार इन जातियों को इस चीज का प्राथमिक ज्ञान हो जाय और इस बात का निश्चय कर लें कि वे अब अपना शोषण नहीं होने देंगी, तो फिर वे जो कुछ खुद पैदा कर सकती है, उतने से ही संतोष कर लेंगी। ऐसा हो तो जहां तक मुख्य आवश्यकताओं का संबंध है, बड़े पैमाने का उत्पादन मिट जायेगा।

यंत्रों द्वारा शोषण

वर्तमान अराजकता और अंधाधुंधी का कारण...आज का (यह) शोषण है।...और यंत्रों का मेरा बुनियादी विरोध इस सत्य के आधार पर खड़ा है कि यंत्र ही वह चीज है जिसने इन राष्ट्रों (यूरोप और अमेरिका) को दूसरे राष्ट्रों का शोषण करने की क्षमता दी है।

मेरा विरोध यंत्रों के संबंध में फैले हुए 'दीवानेपन' से है, यंत्रों से नहीं। परिश्रम का बचाव करने वाले यंत्रों के संबंध में लोगों का जो दीवानापन है, उसी से मेरा विरोध है। आज परिश्रम की बचत इस हद तक की जाती है कि हजारों लोगों को आखिर में भूखों मरना पड़ता है और उन्हें तन ढँकने तक को कपड़ा नहीं मिलता। मुझे भी समय और परिश्रम का बचाव अवश्य करना है; लेकिन वह मुट्ठीभर आदमियों के लिए नहीं, बल्कि समस्त मानव-जाति के लिए। समय और परिश्रम का बचाव करके मुट्ठीभर धनाढ्य हो बैठें, यह मेरे लिए असह्य है। आज यंत्रों के कारण मुट्ठीभर आदमी लाखों लोगों की पीठ पर सवार होकर बैठे हैं और उन्हें सता रहे हैं; क्योंकि यंत्रों को चलाने के मूल में मनुष्य का लोभ है, धन-तृष्णा है, जन-कल्याण की भावना नहीं है। यंत्रों के इस दुरुपयोग के विरुद्ध मैं अपनी पूरी शक्ति से लड़ रहा हूं।

यंत्रों का भी स्थान है और यंत्रों ने अपना स्थान प्राप्त भी कर लिया है। लेकिन मनुष्य के लिए जिस प्रकार की मेहनत करना अनिवार्य होना चाहिए, उस प्रकार की मेहनत का स्थान उन्हें (यंत्रों को) ग्रहण नहीं कर लेना चाहिए। घर में चलाने लायक यंत्रों में सुधार किये जायँ तो मैं उसका स्वागत करूंगा। **लेकिन मैं यह भी समझता हूं कि जब तक लाखों किसानों को उनके घर में कोई दूसरा धंधा करने के लिए न दिया जाय, तब तक हाथ-मेहनत से चरखा चलाने के बदले किसी दूसरी शक्ति से कपड़े का कारखाना चलाना गुनाह है।**

यंत्रों की ऊपरी विजय से चमत्कृत होने से मैं इनकार करता हूं। और मारक यंत्रों के तो मैं एकदम खिलाफ हूं, उसमें मैं किसी हद का समझौता नहीं कर सकता। लेकिन ऐसे सारे औजारों, साधनों या यंत्रों का, जो व्यक्ति

की मेहनत बचाये और झोपड़ियों में रहने वाले लाखों-करोड़ों लोगों का बोझ कम करें, मैं जरूरत स्वागत करूंगा।

जीवित और जड़ यंत्रों की प्रतिद्वंद्विता

हिन्दुस्तान के सात लाख गांवों में फैले हुए ग्रामवासी-रूपी करोड़ों जीवित यंत्रों के विरुद्ध जड़ यंत्रों को प्रतिद्वंद्विता में नहीं लाना चाहिए। यंत्रों का सदुपयोग तो यह कहा जायेगा कि उससे मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले और उसे वह आसान बना दे। यंत्रों के मौजूदा उपयोग का झुकाव तो इस ओर ही बढ़ता जा रहा है कि कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में खूब सम्पत्ति पहुंचायी जाय और जिन करोड़ों स्त्री-पुरुषों के मुंह से रोटी छीन ली जाती है, उन बेचारों की जरा भी परवाह न की जाय।

बड़े पैमाने पर उद्योगीकरण का अनिवार्य परिणाम यह होगा कि ज्यों-ज्यों प्रतिस्पर्द्धा और बाजार की समस्याएं खड़ी होंगी, त्यों-त्यों गांवों का प्रकट या अप्रकट शोषण होगा। इसलिए हमें अपनी शक्ति इसी प्रयत्न पर केन्द्रित करनी चाहिए कि गांव स्वयंपूर्ण बनें और वस्तुओं का निर्माण और उत्पादन अपने उपयोग के लिए करें। यदि उत्पादन की यह पद्धति स्वीकार कर ली जाय तो फिर गांव वाले ऐसे आधुनिक यंत्रों और औजारों का, जिन्हें वे बना सकते हों और जिनका उपयोग उन्हें आर्थिक दृष्टि से पुसा सकता हो, उपयोग खुशी से करें। उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। अलबत्ता, उनका उपयोग दूसरों का शोषण करने के लिए नहीं होना चाहिए।

मैं नहीं मानता कि औद्योगीकरण हर हालत में किसी भी देश के लिए जरूरी ही है। भारत के लिए तो वह उससे भी कम जरूरी है। मेरा विश्वास है कि आजाद भारत दुख से कराहती हुई दुनिया के प्रति अपने कर्तव्य का ऋण अपने गांवों का विकास करके और दुनिया के साथ मित्रता का व्यवहार करके और इस तरह सादा परंतु उदात्त जीवन अपनाकर ही चुका सकता है। धन की पूजा ने हमारे ऊपर भौतिक समृद्धि के जिस जटिल और शीघ्रगामी जीवन को लाद दिया है, उसके साथ 'उच्च चिन्तन' का मेल नहीं बैठता। जीवन का संपूर्ण सौन्दर्य

तभी खिल सकता है, जब हम उच्च कोटि का जीवन जीना सीखें।

विकेन्द्रीकरण की अनिवार्यता

हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना और साथ-साथ उनकी संपूर्ण बौद्धिक और नैतिक—यानी आध्यात्मिक—उन्नति सिद्ध करना है। वह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सध सकता है। केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज-रचना के साथ मेल नहीं बैठता।

यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है, तो उसे बहुत-सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण किया जाय तो फिर उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसा-बल अनिवार्य है। जिनमें चोरी करने या लूटने के लिए कुछ है ही नहीं, ऐसे सादे घरों की रक्षा के लिए पुलिस की जरूरत नहीं होती। लेकिन धनवानों के महलों के लिए अवश्य बलवान पहरेदार चाहिए, जो डाकुओं से उनकी रक्षा करें। यही बात बड़े-बड़े कारखानों की है। गांवों को मुख्य मानकर जिस भारत का निर्माण होगा, उसे शहरप्रधान भारत की अपेक्षा—शहरप्रधान भारत, जल, स्थल और वायु सेनाओं से सुसज्जित होगा तो भी—विदेशी आक्रमण का कम खतरा रहेगा।

इस समय शक्ति का केन्द्र दिल्ली, कलकत्ता या बम्बई में, बड़े शहरों में है। मैं इस शक्ति को भारत के सात लाख गांवों में बांट देना चाहूंगा...इम्पीरियल बैंक में जो सात लाख डालर है, उन्हें बैंक से निकाल कर भारत के सात लाख गांवों में बांट दूंगा। तब हर गांव के पास अपना डालर होगा जो खोया नहीं जा सकता। इम्पीरियल बैंक में रखे हुए सात लाख डालर जापानी हवाई जहाज के एक बम से नष्ट हो सकते हैं। लेकिन अगर वे सात लाख साझीदारों में वितरित रहें तो कोई उन्हें नष्ट नहीं कर सकेगा।

किसी अलग-थलग रहने वाले देश के लिए, भले वह भू-विस्तार और जनसंख्या की दृष्टि से कितना भी बड़ा क्यों न हो, ऐसी दुनिया में जो शस्त्रों से सिर से पांव तक लदी है और जिसमें सर्वत्र वैभव-विलास का ही वातावरण नजर आता है, ऐसा सादा जीवन जीना सम्भव है या नहीं—यह ऐसा सवाल है, जिसमें संशयशील आदमी को अवश्य संदेह होगा। लेकिन इसका उत्तर सीधा है। यदि सारा जीवन जीने योग्य है, तो यह प्रयत्न भी करने योग्य है, चाहे वह प्रयत्न किसी एक ही व्यक्ति या किसी एक ही समुदाय द्वारा क्यों न किया जाय।

लेकिन साथ ही मैं यह भी मानता हूं कि कुछ प्रमुख उद्योग (बड़े पैमाने के) आवश्यक हैं। न तो आरामकुर्सी वाले और न हिंसा वाले समाजवाद में मेरा विश्वास है। मैं तो अपने विश्वास के अनुसार आचरण करने में मानता हूं और उसके लिए सब लोग मेरी बात मान लें, तब तक ठहरना आवश्यक समझता हूं। इसलिए इन प्रमुख उद्योगों को गिनाये बिना ही मैं कह देता हूं कि जहां कहीं भी लोगों को काफी बड़ी संख्या में मिलकर काम करना पड़ता है, वहां मैं राज्य की मालिकी की हिमायत करूंगा। उनकी कुशल या अकुशल मेहनत से जो कुछ उत्पन्न होगा, उसकी मालिकी राज्य द्वारा उनकी ही होगी। लेकिन चूंकि मैं तो इस राज्य के अहिंसा पर ही आधारित होने की कल्पना कर सकता हूं, इसलिए मैं अमीर से उनकी सम्पत्ति बलपूर्वक नहीं छीनूँगा, बल्कि उक्त उद्योगों पर राज्य की मालिकी कायम करने की प्रक्रिया में उनका सहयोग मांगूँगा। अमीर हों या कंगाल, समाज में कोई भी वर्ग अछूत या पतित नहीं है। अमीर और गरीब दोनों एक ही रोग के दो रूप हैं। और सत्य यह है कि कोई कैसा भी हो, हैं तो सब मनुष्य ही।

पसीने की रोटी

अपने देश में जो भयानक गरीबी और बेकारी है, उसे देखकर मुझे रोना आता है। लेकिन मुझे स्वीकार करना चाहिए कि इस स्थिति के लिए हमारी अपनी उपेक्षा और अज्ञान ही जिम्मेदार है। शरीर-श्रम करने में जो गौरव है, उसे हम नहीं जानते। उदाहरण के लिए, मोची जूते बनाने के सिवा कोई दूसरा काम नहीं करता। वह ऐसा समझता है कि दूसरे काम उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। यह गलत खयाल दूर होना चाहिए। **उन सब लोगों के लिए, जो अपने हाथों और पांवों से ईमानदारी के साथ मेहनत करना चाहते हैं, हिन्दुस्तान में काफी धंधा है। ईश्वर ने हरएक को काम करने की और अपनी रोज की रोटी से ज्यादा कमाने की क्षमता दी है। और जो भी इस क्षमता का उपयोग करने के लिए तैयार हो, उसे काम अवश्य मिल सकता है। ईमान की कमाई करने की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह किसी भी काम को नीचा न माने। जरूरत इस बात की है कि ईश्वर ने हमें जो हाथ-पांव दिये हैं, हम उनका उपयोग करने के लिए तैयार रहें।**

महान प्रकृति की इच्छा तो यही है कि हम अपनी रोटी पसीना बहाकर कमायें। इसलिए जो आदमी अपना एक मिनट भी बेकारी में बिताता है, वह उस हद तक अपने पड़ोसियों पर बोझ बनता है। और ऐसा करना अहिंसा के बिलकुल पहले ही नियम का उल्लंघन करना है।...अहिंसा यदि अपने पड़ोसी के हित का खयाल रखना न हो तब तो उसका कोई अर्थ ही न रहे। आलसी आदमी अहिंसा की इस प्रारम्भिक कसौटी में ही खोटा सिद्ध होता है। ❑

15 नवम्बर : विनोबा पुण्य-तिथि

गांधी और नेहरू गणनिरपेक्ष नहीं थे

❑ विनोबा

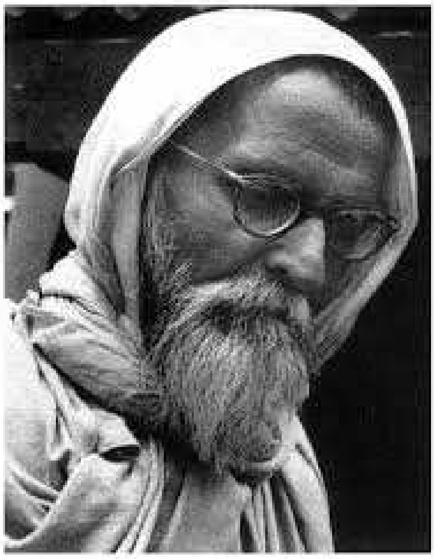

16 से 20 जुलाई, 1964 तक पवनार-सेवाग्राम में अखिल भारतीय कार्यकर्ता-शिविर के दौरान कार्यकर्ताओं की समस्याओं के संबंध में विनोबाजी के परामर्श स्वरूप यह प्रवचन हू-ब-हू यहां प्रस्तुत है, जो देश की वर्तमान स्थिति में भी अनुकरणीय है। –का. सं.

जनता की अहिंसा की शक्ति कैसे बढ़ायी जाय?

आप सब लोग वर्षों से लगातार एक क्रांति के आंदोलन में लगे हुए हैं और एक विशेष परिस्थिति में यहां सोचने के लिए आये हैं। तमिलनाडु से पंजाब तक के और गुजरात से असम तक के लोग दीखते हैं। केरल और काश्मीर के नहीं दीखते। बाकी सारा भारत मौजूद है। देखकर ख्याल आता है कि कुछ भारत में कुछ लोग एक ध्येय सामने रखकर लगभग निष्काम-वृत्ति से काम कर रहे हैं ऐसे दर्शन से आनन्द होता है।

पंडितजी (पं. जवाहरलाल नेहरू) के जाने के बाद अपने देश की परिस्थिति यह पहला विषय है। सबके दिल और दिमाग में वही चीज आज है। एक महान नेता अग्नि के समान सबको उष्णता और प्रकाश देने वाला जब जाता है तब एकदम से फरक पड़ता है। कुछ फरक तो भावनिक होता है (सबजेक्टिव) और कुछ परिस्थिति का होता है (ऑबजेक्टिव्ह)। दोनों फरक हुए हैं। अनेकों पर भावनिक असर पड़ा है। यह असर करीब-करीब सब पक्षों और अपक्षों पर भी पड़ा है। मुझ पर तो पड़ा ही है। गांधीजी के जाने के बाद एकाध महीना मैं गम्भीर चिन्तन में रहा, उसका मुख्य कारण देश की परिस्थिति का था। लेकिन अपना निजी कारण भी था। उनके साथ मेरा आंतरिक अनुबंध था। कुछ वैचारिक अनुबंध भी था। ऐसा मनुष्य जब जाता है तब शोक करना बालिश माना जायेगा। वह नहीं होना चाहिए। लेकिन कर्तव्य के निर्णय का सवाल आता है तब मनुष्य सोच में पड़ जाता है। हिन्दी का 'सोच' शब्द दो अर्थ का है। सोच यानी चिन्तन और सोच यानी शोक। वैसे आज देश की परिस्थिति ठीक है। बड़े पुरुष अपने जाने के बाद अगर देश को बदतर हालत में छोड़कर जायेंगे तो बड़े कैसे कहलायेंगे? उनके जाने पर स्थूल आधार कम हो जाता है। लेकिन सूक्ष्म में लाभ पहुंचाकर वे जाते हैं।

मैंने थोड़े में अपना भाव एक शब्द में व्यक्त किया था कि इसके आगे गण-सेवकत्व चलेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि आगे कोई महापुरुष पैदा नहीं होंगे। बल्कि मैंने आशा की है कि इसके आगे ऊंचे से ऊंचे पुरुष दुनिया को देखने हैं। लेकिन वे बड़े पुरुष आगे के जमाने में गणों में शामिल होना पसंद करेंगे। वे नेतृत्व कबूल नहीं करेंगे। कहेंगे "नेता बनना यह बहुत ही जीर्ण विचार है। अब गण-सेवकत्व का जमाना है।"

अपने यहां माना जाता है कि बुद्ध के बाद कोई अवतार नहीं होगा। कल्कि का अवतार होगा, लेकिन वह प्रलयंकारी होगा। वैसी कुछ स्थिति बीच में हुई थी। क्यूबा प्रकरण शुरू हुआ, उस समय लगता था कि शायद कल्कि का अवतार हो जाय। लेकिन वह टल गया। तो जब तक कल्कि नहीं आता तब तक बुद्ध का ही अवतार है। सिक्खों ने भी माना है कि दसवें गुरु के बाद गुरु नहीं होंगे। इस्लाम भी मानता है कि मुहम्मद पैगम्बर के बाद कोई पैगम्बर नहीं। यानी सब धर्मों की यही आकांक्षा दीखती है कि इसके आगे अवतार की समाप्ति है। पंडितजी का एक विशेष स्थान था। फिर भी स्वभाव से वे डेमोक्रेट थे। यह उनके जीवन में भी देखने को मिला। हैदराबाद स्टेट कायम रहे, ऐसा वे चाहते थे। पर इसका आग्रह उन्होंने नहीं रखा। उनके हाथ में जो सत्ता थी उतनी शायद ही किसी लोक-नेता के हाथ में होगी। इतनी सत्ता होते हुए भी वे जनता की बात को मानते थे। ठीक यही गांधीजी करते थे। हर एक को कहते थे कि अपनी स्वतंत्र बुद्धि से जो ठीक लगेगा वह करो। आखिरी मिसाल है भारत के विभाजन की। भारत पाकिस्तान ऐसे दो हिस्से नहीं होने चाहिए, ऐसा वे मानते थे। फिर भी

अपने इस आग्रह का उन्होंने विसर्जन किया। वह एक शोकांतिका ही है।

ये दोनों महापुरुष गणनिरपेक्ष नहीं थे। न वे लौह-पुरुष थे। वे लोक-सेवक थे। अब गांधीजी और पंडितजी गये तो आधार चला गया, ऐसा लगता है। लेकिन मुझे लगता है कि ठीक मौके पर गये। **गांधीजी के पहले 'स्वराज्य' शब्द मिला था। उसको गांधीजी ने नया रूप दिया और एक नया शब्द 'सर्वोदय' दिया। शब्द देने के बाद उनका कार्य समाप्त हुआ और वे गये। वैसे पंडितजी ने डेमोक्रेटिक सोशलिजम (गणतांत्रिक समाज वाद) शब्द दिया। जीवन की अनुभूति में से वह शब्द निकला। उसके बाद उनका जीवन समाप्त होना लाजिमी था। ज्ञानदेव ने कहा है कि ''फळली उन्मूळे केळी''–केला पक जाता है तो अपने आप गिरता है। जहां शब्द का दर्शन हुआ वहां वह जीवन सुफलित हुआ। पक गया और गिर गया। अब वह व्यापक होकर दूसरों को प्रेरणा देते रहता है। इस दृष्टि से देखता हूं तो नेहरूजी के बाद देश की परिस्थिति अनुकूल हुई है। चिन्तनशील लोग समझ गये हैं कि अब बचपने का-सा व्यवहार नहीं चलेगा।** ऐसी परिस्थिति में हमको शब्दों का समन्वय ध्यान में लेना चाहिए। पहले **स्वराज्य** शब्द आया, बाद में **सर्वोदय** आया, और अब गणतांत्रिक समाजवाद शब्द आया। ये तीनों समन्वित शब्द हैं। स्वराज्य = सर्वोदय = गणतांत्रिक समाजवाद, यूं सोचना चाहिए। शब्द के झगड़े में पड़ना नहीं चाहिए। कार्य प्रवृत्त होना चाहिए।

कार्य के बारे में हम कुछ दुनिया से अपने को भिन्न पा रहे हैं। जहां तक शब्द का सवाल है भारत का अपना एक शब्द है। आज दुनिया दो भागों में बँटी है। कुछ देश साम्यवादी हैं, और कुछ देश गणतांत्रिक हैं। हमारा सर्वोदय का तीसरा विचार है। जो दोनों के गुण लेता है और दोनों के दोष टालता है। ब्रह्मपुर में पंडितजी ने कहा था कि सर्वोदय शब्द बेहतर है लेकिन दुनिया जिस परिभाषा को समझती है उस परिभाषा में बोलना पड़ता है। मतलब यह कि सर्वोदय शब्द में गुणों का समन्वय है। अभी कुल दुनिया के दो विरोधी पक्षों को जोड़ने वाला डेमोक्रेटिक सोशलिजम ही है। फिर भी वह हिन्दुस्तान में सबको नहीं जोड़ रहा है, ऐसी हालत आज है। क्योंकि दुनिया में जैसा व्यापक चिन्तन होता है वैसा भारत में अभी शुरू नहीं हुआ है। भारत की एक परिस्थिति है। कोई अपनी प्राचीन सभ्यता

से, कोई मजहब से, तो कोई सामाजिक संगठन की दृष्टि से, सोचता है। केरल के सर्वोदय सम्मेलन में मैंने कहा था कि हमारे लिए सहानुभूति का प्याला भर जाय इस विश्वास से हमको आगे बढ़ना चाहिए।

अब चीजों के दाम बढ़ रहे हैं। लोग कहते हैं 'संशोधन करो समिति बनाओ'। इसके लिए सर्वोदय वालों ने समिति बनायी है। लेकिन एक आंदोलनकारी के नाते मैं कहूंगा कि इसकी जिम्मेवारी मुझ पर नहीं है। लोग जिनको टैक्स देते हैं, मत देते हैं, उनकी यह जिम्मेवारी है। मैं तो वोट मांगता नहीं, ऐसा जवाब मैं दूंगा। फिर भी एक चिन्तनशील व्यक्ति के नाते आप मेरी राय पूछ सकते हैं। और वैसे मैंने कई बातें सुझायी भी हैं। उन सुझावों से ८० प्रतिशत लोग बच जायेंगे। यानी नीचे वाले बच जायेंगे। लेकिन मान लीजिए कि बढ़ते दामों पर हमारे पास उपाय न हो तो उससे सर्वोदय विचार खंडित नहीं होता। किसी मां के लड़के को पक्षाघात हुआ। वह मुझसे पूछेगी कि लड़के के पक्षाघात पर क्या उपाय किया जाय? मेरे पास उसके लिए औषध नहीं है, ऐसा जवाब यदि मैंने दिया तो उससे सर्वोदय-विचार खंडित नहीं होगा। **मैं देख रहा हूं कि सर्वोदय-विचार के विरोध में भारत में किसी भी पक्ष को कोई एतराज नहीं है। हम खुद सर्वोदय के लायक नहीं हैं, इस तरह के व्यक्तिगत आक्षेप हो सकते हैं। उन आक्षेपों में तथ्य भी है। उतना दोष हमको दूर करना चाहिए। लेकिन सर्वोदय विचार पर आक्षेप नहीं है।**

देश की आज की परिस्थिति में दो मुख्य बातें हैं। एक अनाज के बढ़ते दाम और दूसरा भ्रष्टाचार। मेरी राय में यह भ्रष्टाचार नैतिक नहीं, बल्कि आर्थिक गड़बड़ी के कारण है। जितना भ्रष्टाचार होता है वह बहुत सारा आर्थिक कारणों से होता है। यह मुझे किसी ने नहीं कहा कि भारत की आम जनता में हिंसा या व्यभिचार आदि ज्यादा बढ़ गया है। समाज में यह सब है, लेकिन जीवन की रुचि के लिए आवश्यक माना जाता है उतना है। लेकिन भ्रष्टाचार आर्थिक क्षेत्र में ज्यादा है। वह नैतिम ह्रास के कारण नहीं है; बल्कि पद्धति में ही गलतियां है। नंदाजी भ्रष्टाचार दूर करने की पूरी लगन से कोशिश कर रहे हैं। उस पर मूल में प्रहार किया जाय, यह जरूरी है। सर्वोदय वालों का भी, विचारक के नाते, कुछ कर्तव्य जरूर है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि सारी जिम्मेवारी सरकार की है। वैचारिक दृष्टि से जितनी जिम्मेवारी हम पर आती

है उसको मैं सरकार की जिम्मेवारी के नाम पर टालना नहीं चाहूंगा। अश्लीलता-विरोधी आंदोलन मैंने छेड़ा, गंदे पोस्टरों के खिलाफ। क्योंकि उसमें हमारी जिम्मेवारी हमने मानी।

आज भारत में जो आर्थिक सवाल उपस्थिति हैं उसके कारण व्याकुल होने की जरूरत नहीं है। उसके संबंध में सुझाव दे सकते हों तो जरूर दिये जायें। लेकिन इस समय सावधान रहने का क्षेत्र राजनीतिक है। **हिन्दुस्तान के अंदर, बाहर और सीमा पर भी। हिन्दुस्तान के अंदर और पाकिस्तान के अंदर जो साम्प्रदायिक दंगे होते हैं वे साम्प्रदायिक कारणों से नहीं होते। वे राजनीतिक कारणों से होते हैं। राऊरकेला, खुलना आदि में जो हुआ वह कौमी द्वेष के कारण नहीं, बल्कि राजनीतिक कारणों से हुआ। राजनीति के लिए कौमी मनोवृत्ति को उभाड़ा गया। मेरे चिन्तन में हिन्दुस्तान पाकिस्तान दोनों शामिल हैं, दोनों का फौज पर खर्च हो रहा है। दोनों मिलकर हर साल 1400 करोड़ रुपये फौज पर खर्च करते हैं। सारी दुनिया में मिलिटरी पर खर्च होता है वह इस वक्त मैं छोड़ देता हूं। वह 'जय जगत' का विचार है।**

चिन्ता का दूसरा विषय है राजनीतिक पार्टियां! ये पार्टियां देश को जोड़ने की दिशा में नहीं बल्कि तोड़ने की दिशा में काम कर रही हैं, ऐसा दीखता है। अपोजीशन पार्टी देश की राजनीति में जो दोष है उनको सुधारने की यानी लोकतंत्र के करेक्शन का काम कर रही हैं, ऐसा होना चाहिए। तभी वह देश को जोड़ने वाली ताकत होंगी। लेकिन आज विरोधी पार्टी का रवैया देश को तोड़ने की दिशा में जाने का भय है।

फिर सीमाओं के साथ हमारा जो संबंध है उसमें भी भय पड़ा है। उससे डरने का कारण नहीं है। लेकिन निडरता के साथ साथ अकल से सोचने की जरूरत है। कश्मीर, पाकिस्तान, असम के ट्राइबल इलाके, नागालैंड आदि सारे सीमाक्षेत्र भय के स्थान हैं।

अब मैं दूसरे सवाल पर आता हूं। जागतिक परिस्थिति के संबंध में यहां बैठे-बैठे हम कुछ अभिप्राय बना सकते हैं। पक्के अभिप्राय नहीं बना सकेंगे। क्योंकि हमको जो कुछ दुनिया की जानकारी पड़ने को मिलती है, वह अंग्रेजी भाषा में होती है। अंग्रेजी भाषा काफी व्यापक है। फिर भी रशिया या चीन में क्या हो रहा है, इसका सीधा ज्ञान हमको नहीं होता। इसलिए ऑबजेक्टिवली हमारा कहना ठीक ही निकलेगा ऐसा भरोसा नहीं है। फिर भी इतना जरूर कह सकते हैं कि क्रुश्चेव्ह व्हायोलंटली नॉन व्हायोलंट बन रहा है। कम्युनिजम के मूल विचार के प्रचार के लिए हिंसा का त्याग करना चाहिए, यह वह समझ गया है। यह जागतिक परिस्थिति में एक अनुकूल बात माननी चाहिए। न्यूक्लिअर एज का यह परिणाम है। इस जमाने के सोचने वालों को सारे विश्व को ध्यान में लेकर सोचना पड़ता है। चाओ भी काफी धीरज से काम कर रहा है, ऐसा मेरे पर असर है। हो सकता है कि तिब्बत के बॉर्डर पर वह फौज जमाता होगा। मिलिटरी को अलग करके सरकार वाले सोच नहीं सकते। चीन तो सोचता ही नहीं होगा। तिब्बत को अपने ढंग से वह बना रहा है। लेकिन उससे भारत पर तुरंत आक्रमण का भय मुझे नहीं दीखता। फिर भी अहिंसक को बुरे से बुरे परिणामों के लिए तैयार रहना चाहिए। चीन एकदम से आक्रमण करेगा, इतना नालायक वह नहीं है। इसलिए सीमा में भी भय पड़ा है, ऐसा नहीं मानना चाहिए। भय तो मुख्यता हमारे गांवों में है। लोगों ने माना कि हमारा देश मिलिटरी के बारे में गाफिल रहा और पंचशील पर विश्वास रखकर चला। यह कथन पूर्णतया ठीक नहीं है। अपना देश ग्रामीण जनता के संबंध में गाफिल रहा यह मुख्य बात है। अगर हम देहातों के बारे में गाफिल नहीं होते तो हम अधिक सुरक्षित रहते। हमको यानी शांतिसेना, खादी या ग्रामदान वालों को यह श्रेय हासिल हो रहा है कि उस ग्रामीण गाफिलियत को हम दूर करने की कोशिश कर रहे हैं। यह त्रिविध कार्यक्रम देश की प्रतिरक्षा का कार्यक्रम है। इसीलिए मैंने ग्रामदान को सुलभ बनाया। चीन का आक्रमण नहीं होता तो मुझे वह नहीं सूझता। लेकिन इस समय जल्द से जल्द व्यापक पैमाने पर ग्रामदान होंगे तो वह देश की सुरक्षा की दिशा में ले जाने वाला कार्यक्रम होगा। इस समय देश में खतरा राजनीति का है। उसका सीधा सामना यह त्रिविध कार्यक्रम करता है। यह दृष्टि अगर मजबूत रही तो आपका कार्य सरल हो जायेगा।

अब तीसरे विषय पर आता हूं। इस सारे संदर्भ में सर्वोदय आंदोलन का कर्तव्य। सर्वोदय का विचार सर्वमान्य होने की तैयारी हो रही है। इसलिए सर्वोदय विचारकों का गुणवर्धन होने की आवश्यकता है। सर्वोदय विचार का वर्धन तो हो चुका। लेकिन उसके वाहन हम बनने वाले हैं तो हमारा गुणवर्धन होना चाहिए। ईश्वर का एक नया रूप सामने आ रहा है। वह ऊंचे-से-ऊंचा विचार प्रवर्तित करने के लिए नालायक से नालायक साधनों को हाथ में लेना चाहता है; तो हमको समझना चाहिए कि गुणवर्धन की हमें जरूरत है।

इस गुणवर्धन में पहला गुण मैं स्नेह को मानता हूं। हमारी जमात स्नेह से जुड़ी हुई होनी चाहिए। विचारों से वह जुड़ी हुई है ही। कुछ लोग कहते हैं कि जो स्नेह परिवार में होता है वह संस्थाओं में नहीं सधता। लेकिन मैं पूछता हूं कि कुटुम्ब में स्नेह के लिए क्या प्रक्रिया चलती है? वहां अपनी लड़की को बाहर भेज देते हैं और एक बाहर की लड़की को शनि, राहु इत्यादि देखकर घर में लाते हैं। यह जो दोहरी प्रक्रिया करते हैं वह काहे के लिए? **कुटुम्ब-संस्था प्रधानतया संतान-हेतु से बनी है। लेकिन वहां उत्तम स्नेह रह सकता है, तो सर्वोदय के हेतु से बनी जमात में स्नेह रहना ही चाहिए। हमारे समाज में ऐसा स्नेह होना चाहिए जैसा किसी परिवार में भी न हो।**

दूसरा गुण होना चाहिए नम्रता। हमको नम्रता की बहुत जरूरत है। जो काम हम करें उसका श्रेय हमको नहीं चिपकना चाहिए। गलती से वह हमको चिपके तो समझना चाहिए कि काम करने की पद्धति में कहीं गलती है। श्रेयरूपी बला हमारे पीछे नहीं लगनी चाहिए। कहने का मतलब यह कि भगवत् प्रेम ही हमारा ध्येय होना चाहिए।

तीसरी बात है, हमारे विचार पर दृढ़ श्रद्धा। समाज के सामने जो समस्याएं हैं उनको हम बायपास नहीं करते; बल्कि उन पर हम सीधा प्रहार करते हैं। नेशनल मिनिमम की बात की जाती है। वह सिद्ध करना होगा तो सारा प्लानिंग का ढांचा बदलना पड़ेगा। अभी तो चाहे कम्युनिस्ट हो या कॅपिटलिस्ट हो, दोनों केन्द्रित उत्पादन में मानते हैं। लेकिन हम तो उत्पादन भी विकेन्द्रित चाहते हैं। इसलिए ये लोग हमारे खादी ग्रामोद्योग के कार्यक्रम पर प्रहार करते रहेंगे और नेशनल मिनिमम की रट लगाते रहेंगे। लेकिन हमको समझना चाहिए कि नेशनल मिनिमम के लिए विकेन्द्रित उत्पादन ही कारगर तरीका है। इस तरह सर्वोदय के कार्यक्रम पर हमारी दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए।

अंबर में बिजली लगे या न लगे इत्यादि प्रश्न उठाये जाते हैं। ऐसे प्रश्नों के संबंध में हमारा अभिप्राय साफ है। गांव-गांव में बिजली आ सकती है, आनी भी चाहिए। और उसका अच्छा उपयोग भी करना चाहिए। लेकिन बिजली के उपयोग के कारण गांव के अंदर-अंदर शोषण न हो और एक गांव का दूसरे गांव के द्वारा शोषण न हो, इतना देखना चाहिए।

और एक प्रश्न पूछा गया है कि कार्यकर्ता थोड़े हैं। हम थोड़े हैं और काम है ज्यादा। तो हम अधिक कैसे बनें, इसकी प्रक्रिया ढूंढ़नी चाहिए। घर-घर साहित्य पहुंचाने की योजना हमको करनी होगी। साहित्य पहुंचाने में सबका सहयोग मिल सकता है। घर-घर साहित्य पहुंचाने का जो कार्य आज चल रहा है उससे मुझे कतई संतोष नहीं है। पूरा का पूरा सर्वोदय विचार फैले इसके लिए प्रांतीय आयोजन होना चाहिए। कोई नई किताब प्रकाशित हो तो वह हर प्रांत की भाषा में निकलनी चाहिए। अंग्रेजी भूदान बंद हुआ वह उलटी दिशा में काम हुआ, ऐसा मैं मानता हूं। दक्षिण में व्यापक प्रचार की आवश्यकता है। खास करके दक्षिण में हिन्दी का व्यापक प्रचार करना चाहिए। दक्षिण में चार प्रसन्न भाषाएं हैं। तमिलनाडु में कुछ अच्छा साहित्य-प्रचार चल रहा है। लेकिन वहां एक खम्भे पर द्वारिका खड़ी है। केरल में थोड़ा काम हो रहा है। बंगाल, उड़ीसा, असम वाले कुछ कर लेंगे, ऐसी आशा है। कर्नाटक में सर्वोदय पात्र का काम चलता है; उसके माध्यम से सर्वोदय साहित्य-प्रचार चल सकता है।

नारायण भाई : अभी आपने कार्यक्रम की जो बातें कही उससे लगता है कि सीमाक्षेत्र के काम को हम लोग जो प्रधानता दे रहे हैं, वह कम करना चाहिए क्या?

विनोबा : ठीक सवाल पूछा। सीमा क्षेत्र के कामों का महत्त्व कम नहीं है। क्योंकि महत्त्व कम होता तो मैत्री आश्रम की स्थापना मैंने वहां नहीं की होती। लेकिन सीमा क्षेत्र के कार्य में से तात्कालिक परिणाम की अपेक्षा ग्रामदान से है। सीमा प्रदेश में हम जो सेवाकार्य कर रहे हैं, उसका परिणाम दीर्घ काल में दीखने वाला है। इसलिए बैलेंस रखना होगा। कुछ मजबूत मनुष्य वहां जायं। लेकिन अधिकतर स्थानीय लोग ही वहां रहें। भारत भर से जो लोग वहां जाते हैं वे वहां कम काम कर पायेंगे। असम वाले उस काम के लिए मिलें, इस प्रकार योजना करनी होगी। ❑

1948 में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में कार्यकर्ता सम्मेलन में स्थापित

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल)

83वां अधिवेशन : 27-28 दिसंबर, 2014 को रानी (राजस्थान) में

- ❑ अधिवेशन संघ अध्यक्ष **श्री महादेव विद्रोही** की अध्यक्षता में सम्पन्न होगा। ❑ गांधीवादी चिन्तक एवं **न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी** अधिवेशन के मुख्य अतिथि होंगे। ❑ **'प्राकृतिक आपदाओं से सबक'**, **'वर्तमान शिक्षा पद्धति एवं हमारा विकल्प'** तथा **'वर्तमान राष्ट्रीय परिस्थिति एवं हमारी भूमिका'** अधिवेशन में चर्चा के मुख्य विषय होंगे। ❑ अधिवेशन में भारत के 22 राज्यों से करीब 500 लोकसेवक एवं सर्वोदय मित्र शामिल होंगे।
- ❑ श्री रतनचंदजी ओसवाल (अध्यक्ष, मरुधर महिला शिक्षण संघ) की अध्यक्षता में एक स्वागत समिति बनायी गयी है। सर्वश्री पोपटलालजी सुन्देशा, अचलचंदजी परमार, एन.सी. मेहता, महेन्द्रजी ढोका, भरतजी जैन, मोहनजी जैन, जेठमल सुराणा, अरुण हाडा, भवानीशंकर कुसुम, वशिष्ठ कुमार, राजकमलजी पारीक, सोहनराजजी खजांची (अध्यक्ष, सर्वोदय केन्द्र, खिमेल), श्रीमती शशि त्यागी (न्यासी, सर्व सेवा संघ), श्रीमती आशा बोथरा (अध्यक्ष, राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल) आदि समिति के अन्य सदस्य हैं, जो अधिवेशन की तैयारियों में लगे हुए हैं।
- ❑ सभी लोकसेवक एवं सर्वोदय मित्र अधिवेशन में सादर आमंत्रित हैं। ❑ **रानी** स्टेशन मारवाड़ एवं आबू रोड के बीच है। कुछ गाड़ियां रानी में नहीं रुकती हैं। ऐसी गाड़ियों में से आने वाले प्रतिनिधि **फालना** स्टेशन पर उतरें। पहले से जानकारी देने पर वहां पर अधिवेशन स्थल पर व्यवस्था हो सकेगी। ❑ विस्तृत जानकारी के लिए सर्व सेवा संघ के फोन नं. 07152-284061/284091 पर संपर्क किये जा सकते हैं।

–शेख हुसैन, महामंत्री

15 नवम्बर : विनोबा पुण्य-तिथि

विनोबा की तीसरी शक्ति

❑ जयप्रकाश नारायण

तीन गुण, तीन दोष, तीन मूर्ति, तीन लोक आदि की कल्पना भारतीय समाज ने प्राचीनकाल से कर रखी है। वर्तमान इतिहास में तीन दुनिया की कल्पना की गयी है। दुनिया का जो भाग अमेरिका अथवा रूस के प्रभाव या 'गुट' में नहीं है, उसे थर्ड वर्ल्ड, तीसरी दुनिया कहते हैं। इसी प्रकार तीसरी शक्ति, थर्ड फोर्स की भी एक धुँधली कल्पना इन दिनों है, जो (विश्व) शांति की शक्ति मानी जाती है। परंतु इस शक्ति की रूपरेखा काफी अस्पष्ट है।

सर्वोदय अथवा गांधी-विनोबा की यह 'तीसरी शक्ति' है क्या? मानव-समाज के परिवर्तन, पुनर्निर्माण तथा धारण के लिए इतिहास में केवल दो शक्तियों का जिक्र आता है : हिंसा-शक्ति तथा दण्ड-शक्ति। प्रेम की शक्ति का भी जिक्र है, परंतु वह परिवार के सीमित दायरे के बाहर काम करती नहीं दीखती। ईसा ने अवश्य उसके दायरे को पड़ोसी तक फैलाने की कल्पना की और वैसा उपदेश किया। पड़ोसी का अर्थ व्यापक रूप में लिया जा सकता है और पूरे सामाजिक जीवन से उसका अभिप्राय माना जा सकता है। परंतु प्रेमधर्म को सामाजिक जीवन में उतारने का ईसा के अनुयायियों द्वारा कोई प्रयत्न किया गया, ऐसा विदित तो नहीं है। हां, ईसाई-धर्म के प्रारम्भिक काल में तद्धर्मावलम्बियों ने प्रेमाधारित बस्तियों की अवश्य स्थापना की थी। ये बस्तियां ईसाई-धर्म के आदर्शों पर अपना जीवन-व्यवहार चलाने में काफी सफल रहीं। बाद में राज्य-धर्म बन गया तो उसके प्रेम-तत्त्व का सामाजिक प्रभाव क्षीण होता गया। वर्तमान ईसाई-समाज के लिए यह तो कदापि नहीं कहा जा सकता है कि वह किसी माने में ईसा के प्रेम या अहिंसा के उपदेशों पर कायम है।

जब तक ईसाई-धर्म राज्य-धर्म नहीं बना था, तब तक ईसाइयों ने रोम-साम्राज्य के अत्याचारों का ईसा के उपदेशों के अनुसार पूर्ण अहिंसक रीति से बड़े साहस और वीरता के साथ सामना किया था। परंतु राज्य-धर्म बनने के बाद सामाजिक जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं (राजनीतिक, आर्थिक) आदि को अहिंसक रूप देने का प्रयत्न लगभग समाप्त हो गया—जो कुछ बचा या आगे जाकर प्रकट हुआ, वह छोटे-छोटे समूहों तक सीमित रहा—जैसे सोसाइटी ऑफ फ्रेण्ड्स (क्वेकर जमात) में।

पाश्चात्य समाज में समय-समय पर आदर्शवादियों ने आदर्श बस्तियां कायम कीं, परंतु न वे स्थायी ही रह सकीं, न सामान्य समाज पर उनका विशेष प्रभाव ही पड़ा।

भारत में महावीर तथा बुद्ध ने अहिंसा तथा करुणा को धर्म का आधार बनाया। परंतु यह धर्म व्यक्ति अथवा भिक्षु-संघ के आंतरिक जीवन तक सीमित रहा। सम्राट अशोक जगत के एकमात्र ऐसे शासक हुए, जिन्होंने बौद्ध धर्म को स्वीकार करने के बाद तथा कलिंग-विजय के रक्तपात से संतप्त होकर आगे युद्ध न करने का संकल्प किया। फिर भी अशोककालीन भारतीय समाज अहिंसा अथवा करुणामय बना, ऐसा तो नहीं लगता। प्रत्यक्ष हिंसा जहां नहीं है वहां अहिंसा है, ऐसा मानना बड़ी भूल है। शोषण, उत्पीड़न, विषमता तथा अन्य प्रकार के सामाजिक-आर्थिक अन्याय, जो राज्य की दण्ड शक्ति के बल पर चलते हैं, हिंसा ही तो हैं, यद्यपि सब प्रच्छन्न अथवा प्रत्यक्ष हैं।

प्रेम-अहिंसा-करुणा की आधारशिला पर स्थापित इन तीनों धर्मों के मानने वाले अपने-अपने समाज की रचना इस आधारशिला पर नहीं कर सके। उनकी यह प्रकट विफलता गूढ़ शोध का एक विषय है। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि महावीर, बुद्ध अथवा ईसा ने समाज में छिपी हुई, परंतु निरंतर चलती हुई,

हिंसा को पहचाना नहीं। उन सबने गरीबी-अमीरी के संबंध में, संग्रह, तृष्णा आदि के संबंध में जो गूढ़ उपदेश दिये हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि समाज की अप्रत्यक्ष हिंसा के प्रति वे पूर्ण जाग्रत थे।

समाज के अंतस् से हिंसा को निकालने के विषय में इन धर्मों की जो विफलता हुई, उसके दो मुख्य कारण मुझे प्रतीत होते हैं। एक यह कि संयम, अपरिग्रह, त्याग, तृष्णा-क्षय, करुणा आदि गुण व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्थान अथवा निर्वाण के साधनमात्र मान लिये गये। इस लोक का परिवर्तन तथा परिष्कार इनके द्वारा करना है, ऐसा उन आदि महात्माओं का उद्देश्य होते हुए भी, इन धर्मों की संगठित संस्थाओं ने नहीं माना; क्योंकि ऐसा करने से समाज के शासक तथा शोषक वर्ग की अप्रसन्नता और सम्भाव्य विरोध का सामना करना पड़ता, जिससे धर्म (सम्प्रदाय) का 'प्रसार' नहीं हो पाता। दूसरा कारण जो धर्म-प्रसार की इसी मनोवृत्ति से उत्पन्न हुआ, वह यह था कि ये तीनों धर्म राज्य-धर्म बने और राज्य की संगठित हिंसा तथा दण्ड-शक्ति के पोषक बन गये। और तब तो यह असम्भव हो गया कि वे समाज में अहिंसा की प्रतिष्ठा कर सकें।

हिंसा-शक्ति तथा दण्ड-शक्ति (जो स्वयं भी प्रच्छन्न हिंसा-शक्ति ही है, यद्यपि लोकतंत्र में उतनी हिंसा लोकसम्मत होती है) आज तक मानव-समाज को शासित करती रही है। उनके कारण जहां एक ओर मानव-समाज आणविक युद्ध की संभावना के कगार पर खड़ा है, वहां दूसरी ओर—चाहे लोकतंत्र हो, एकतंत्र हो अथवा और कोई अन्य तंत्र हो—मानव एक अतिकेन्द्रित, अतियांत्रिक राजनीतिक-आर्थिक संगठन के नीचे दबकर अपना व्यक्तित्व तथा स्वायत्तता (औटोनोमी) खो चुका है। सबसे धनी देश अमेरिका में भी 15 प्रतिशत गरीब हैं, अपार विषमता है, रंग (जाति)-भेद है, तरुण तथा बुद्धिजीवी वर्गों में विद्रोह है। उधर **रूस में 52 वर्षों के साम्यवादी शासन के बाद भी आज न मजदूरों के हाथ में कारखाने हैं, न किसानों के हाथ में खेत, न विद्यार्थियों के हाथ में विश्वविद्यालय, न विचार-स्वातंत्र्य, न श्रमिकों का अपना राज्य, जिसमें सत्ता (आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक)**

श्रमजीवियों की सोवियतों अथवा पंचायतों के हाथों में हो। सत्ता आज भी साम्यवादी पक्ष के हाथ में है, जिसमें लोकतांत्रिक आचार-व्यवहार का अब भी पूर्ण अभाव है। अमेरिका के 'मनरो डॉक्ट्रिन' की भांति रूस में 'ब्रेशनियेफ डॉक्ट्रिन' का हाल में उद्घोष हुआ है, जिसके अनुसार सोवियत रूस ने अपने इस जन्मजात अधिकार की घोषणा की है कि वह यूरोप के अपने प्रभाव-क्षेत्र में, यानी जहां-जहां साम्यवादी पक्षों का राज्य है वहां, जैसा भी चाहे हस्तक्षेप—यहां तक कि सामरिक हस्तक्षेप भी, जैसा चेकोस्लोवाकिया में उसने पिछले साल किया—कर सकता है। चीन के माओ ने तो बन्दूक की नली को सत्ता की जननी बताकर वर्तमान मानव-सभ्यता के एक अत्यन्त कटु सत्य को नग्न रूप दे दिया है।

जो लोकतांत्रिक समाजवादी हैं, उनकी दौड़ तो राष्ट्रीय कारण तक ही है। परंतु जहां-जहां समाजवादी शासनों के तत्त्वावधान में भी राष्ट्रीयकरण हुआ है, वहां-वहां विषमता, शोषण आदि का अंत हो गया है, अथवा सत्ता श्रमजीवियों के हाथों में आ गयी है, अथवा इतना भी हो गया कि राष्ट्रीयकृत (नेशनलाइज्ड) आर्थिक क्षेत्रों में मजदूर प्रबंधकों के समकक्ष आ बैठे हैं और निर्णायक (डिसीशन-मेकिंग) अधिकारों में उन्हें उचित भाग प्राप्त हो चुका है, अथवा उन क्षेत्रों में कोई नवीन भावना (स्पिरिट) पैदा हुई है, जो प्रबंधक तथा श्रमजीवी दोनों को प्रेरित कर रही है और उनके पारस्परिक संबंधों तथा उनके अपने-अपने कार्यों के प्रति उनके दृष्टिकोणों को परिवर्तित कर पायी है, ऐसा तो कुछ भी लक्षित नहीं होता। तकनीकी और औद्योगिक विकास के चलते मजदूरों की आर्थिक स्थिति में उन्नति अवश्य हुई है; मजदूर यूनियनों की शक्ति में बड़ी वृद्धि हुई है; मंगलकारी राज्य का उदय हुआ है। परंतु इन सबको मिलाकर भी समाजवाद नहीं बनता। उसकी कसौटी तो वे ही परिवर्तन हैं, जिनकी ओर ऊपर इशारा किया गया है।

उपर्युक्त विश्लेषण से निष्कर्ष यही निकलता है कि हिंसा-शक्ति तथा दण्ड शक्ति दोनों ही मानव-समाज की मूल समस्याओं को हल करने में विफल हुई हैं। किसी तीसरी शक्ति की आवश्यकता स्पष्ट दीखती है। यह शक्ति तो वही है, जिसका महावीर, बुद्ध, ईसा ने इतनी कुशलता से प्रतिपादन किया था–यानी प्रेम-अहिंसा-करुणा की शक्ति। परंतु प्रश्न यह उठता है कि जब यह शक्ति उनके समय में अथवा उनके मतावलम्बियों के समाज में, सामाजिक समस्याओं को हल न कर सकी—चाहे व्यक्ति के स्तर पर वह चाहे कितनी ही सफल हुई हो—तो इस युग में उसकी सफलता की क्या संभावना है? यह

एक सर्वथा समीचीन प्रश्न है। पूर्ण रूप से इसका उत्तर तो आज किसी के पास नहीं है। फिर भी परिस्थिति, अनुभव तथा विचार से इतना और ऐसा उत्तर आज प्राप्त है कि उपर्युक्त सम्भावना पहले से कहीं अधिक सबला हुई है, ऐसा मान सकते हैं।

एक तो यह परिस्थिति है कि पूर्वकाल की अपेक्षा सर्वसाधारण इस समय अधिक चेतनाशील (कॉन्शस) हैं। उनकी इस चेतनाशीलता का एक लक्षण यह है, जैसा कि ऊपर कहा गया है कि हिंसा-शक्ति अथवा दण्ड-शक्ति से जैसी भी समाज-रचना अब तक हुई है या जैसी भी राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था उनके द्वारा कायम की गयी है, उससे उन्हें संतोष नहीं है। **पाश्चात्य देशों के तरुण विशेष रूप से वर्तमान सामाजिक व्यवस्था से असंतुष्ट दीखते हैं। साम्यवादी देशों के तरुणों में भी यह असंतोष व्याप्त है, ऐसा लगता है। इसलिए वर्तमान ऐतिहासिक परिस्थिति की यह माँग है कि इन दोनों शक्तियों से भिन्न किसी तीसरी शक्ति आश्रय लिया जाय।**

दूसरी बात, पुराने प्रयोगों के अनुभवों पर से आज की पीढ़ी के लिए यह संभव हो गया है कि पहले की गलतियों को न दुहराया जाय। **प्रेम आदि की शक्ति ने पूर्वकाल में एक बड़ी गलती यह की थी कि राज्य का आश्रय लेकर अपना प्रसार करना चाहा। परिणाम उल्टा हुआ। प्रेम-शक्ति पर दण्ड-शक्ति, अहिंसा-शक्ति पर हिंसा-शक्ति तथा करुणा-शक्ति पर कानून-शक्ति हावी हो गयी और विनायक का वानर बन गया। इस अनुभव का लाभ उठाकर हमें राज्य-सत्ता से अलग रहकर तीसरी शक्ति का विकास करना है। इसीलिए गांधीजी ने कहा था कि अहिंसा में विश्वास करने वालों को राज्य-सत्ता में नहीं जाना चाहिए। और इसीलिए विनोबाजी ने लोक-सेवकों को राजनीतिक पक्षों में जाने की सलाह नहीं दी और राजनीति के बदले में लोकनीति की कल्पना की।**

पुराने अनुभव से एक सबक और सीखा जा सकता है। जहां पुराने कार्यकर्ताओं ने व्यक्तिगत जीवन तथा धर्म-संघों (रेलिजस ऑर्डर्स) तक प्रेम आदि शक्ति को सीमित रखा, वहां हमें संकल्पपूर्वक समाज के सभी व्यवहारों तथा संस्थानों में उस शक्ति को प्रतिष्ठित करना है और तदनुसार प्रेमाधारित अहिंसक समाज का निर्माण करना है। इसके लिए समाज के अंदर जो अप्रत्यक्ष हिंसा निहित है, उसे उन्मूलित करना प्रत्यक्ष हिंसा को रोकने या शांत करने से अधिक महत्त्व रखता है, यह सदा ध्यान में रखना होगा।

तीसरी बात, जब पिछले अनुभवों को ध्यान में रखते हुए हम विचार करते हैं तो इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि यदि पिछली गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं करनी है तो अपने सारे कार्यों का आधार विचार-शासन को बनाना है और कर्तृत्वशक्ति का पूर्ण विभाजन करना है। लोगों को विचार समझाना, समझाकर उनके पूर्वाग्रहों को बदलना तथा उनकी व्यक्तिगत तथा सामूहिक कर्तृत्वशक्ति को जाग्रत करना, यही हमारा सही मार्ग हो सकता है। और विचार करने से ऐसी प्रतीति बनती है कि इस पद्धति से सामाजिक क्रांति का प्रयास किया जाय तो जहां पहले के प्रयोग विफल हुए, वहां नये प्रयोग सफल हो सकते हैं। वैसे आदर्श तथा व्यवहार में जो अनिवार्य अंतर रह जाता है उतना तो रहेगा ही, जैसे रेखा की परिभाषा और पतली-से-पतली रेखा में।

चौथी बात, आधुनिक काल में गांधीजी ने इस तीसरी शक्ति का समाज के स्तर पर जो व्यापक प्रयोग दक्षिण अफ्रीका तथा भारत में किया, उसने भी हमें महत्त्वपूर्ण पाठ सिखाये हैं। ये सब पाठ हमारे लिए नये हैं, जो पहले के प्रयोगों से उपलब्ध नहीं थे। वर्तमान काल में विनोबाजी ने भी जो व्यापक प्रयोग किये हैं, उनसे भी हमें कई नये सबक मिले हैं, जिनसे आगे के प्रयोगकर्ताओं को बड़ी सहायता मिलेगी।

ये कुछ कारण हैं, जिनसे मैं मानता हूं कि जिस कार्य में महावीर, बुद्ध, ईसा नहीं सफल हो पाये, उसमें आज हम जैसे सामान्य जन सफल हो सकते हैं, यदि हम विचार तथा श्रद्धापूर्वक प्रयास करें। ❑

(भूमिका : 'तीसरी शक्ति')

केरल में पूर्ण नशाबंदी लागू

सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी ने दी सरकार को बधाई!

केरल सरकार द्वारा राज्य में पूर्ण नशाबंदी लागू करने के लिए सर्व सेवा संघ ने कौसानी, उत्तराखंड में 6-7-8 सितंबर, 2014 को आयोजित कार्य-कारिणी की बैठक में केरल में पूर्ण नशाबंदी लागू करने के निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा केरल सरकार को इस क्रांतिकारी कदम उठाने के लिए हार्दिक बधाई दी है।

इस अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष भाई महादेव विद्रोही ने गांधी के इस वचन का स्मरण दिलाया, जिसमें गांधीजी ने कहा था—''यदि मैं एक दिन के लिए देश का तानाशाह बनूं तो सबसे पहले पूर्ण नशाबंदी लागू कर दूं।' उन्होंने कहा कि गांधीजी के इस वक्तव्य को केरल सरकार ने चरितार्थ कर एक पुनीत कार्य किया है और वह बधाई का पात्र है। अध्यक्ष ने केरल के मुख्यमंत्री को एक बधाई पत्र भेजने की सूचना भी दी।

इस अवसर पर सर्व सेवा संघ की कार्यकारिणी ने देश की विभिन्न राज्य सरकारों से केरल सरकार की तरह अपने-अपने राज्यों में भी पूर्ण नशाबंदी लागू करने की अपील की है। –का. सं.

14 नवंबर : बाल-दिवस
गांधीजी की बाल-कथा

कौन है 'मोनिया'?

बच्चो! तुम भी गांधी बुद्ध और गौतम बन सकते हो। गांधी के जीवन के संबंध में अक्सर बच्चों में यह जिज्ञासा रहती है कि इतने महान व्यक्तित्व का बचपन कैसा था? कैसे वे इतना महान बन गये? और फिर इतने महान व्यक्ति को आखिर क्यों सत्य, अहिंसा और इनसानियत के लिए जान देनी पड़ी? उन्हें क्यों गोली मारी गयी? तुम्हारे लिए 'गांधी बाल-कथा' यहां प्रस्तुत है। —का. सं.

वह शरारती नहीं था, चंचल था। स्वभाव का सीधा था, लेकिन था पारे जैसा। पल में इधर, पल में उधर। वह कहीं चैन से नहीं बैठता था। जब देखो, भागता-फिरता था। कभी कमरे में तो कभी आंगन में। हमेशा धमा-चौकड़ी मचाता था और आंखों से ओझल हो जाता था।

नाम मोनिया। घर में सबसे छोटा। उसके दो बड़े भाई थे—काला और करसनिया। और, उन दोनों के बीच एक बहन—गोकी। वह मोनिया से सात साल बड़ी थी।

मोनिया का मुखड़ा सौम्य था। वह बहुत सुंदर नहीं लगता था। लेकिन, उसके चेहरे पर एक आभा दमकती थी। नुकीली नाक, सपनीली आंखों। बाल कुछ घुँघराले-से। उसे गोद में लेने को किसी का भी जी ललचता था। वह और बच्चों की तरह रोता नहीं था। इसलिए उसको गोद में लेकर घूमने-खेलने में सबको मजा आता था। मोनिया छरहरा भी था। दोनों बड़े भाइयों की तरह उसका बदन दोहरा नहीं था।

दस साल की गोकी अक्सर मोनिया को गोद में उठा लेती। लेकिन मां डांटती थी। वह कहती थी—'तू उसे गिरा देगी'।

यूं मोनिया अपनी बहन की गोदी में खुशी से चला जाता था। लेकिन मां की बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ता था। हालांकि वह मां का कहा समझता नहीं था। मां के डांटने पर गोकी उसे गोद से उतार देती। तब मौका पाकर मोनिया कूदता-फांदता बाहर चला जाता।

पिताजी काम-काज के लिए अक्सर घर से बाहर रहते थे। मां भारी गृहस्थी के बोझ में दबी हुई थी। वह अपने 'मोनिया के लिए पूरा समय नहीं दे पाती थी। इसलिए उसने मोनिया को एक 'दाई' के हवाले कर दिया। तब से वही उसकी रखवाली करने लगी।

पर मोनिया उसे देखता तो चिल्ला उठता—'मुझे दाई नहीं चाहिए, मुझे दाई नहीं चाहिए।'

पिताजी उसे समझाते—'दाई तुझे कहां पकड़ती है। तुझे जाना है जा। दाई तो इसलिए जाती है कि तू कहीं खो न जाए। तू कहीं खो जाएगा तो हम तुझे कहां ढूंढ़ते फिरेंगे?'

मोनिया उत्तर देता—'में नहीं खोऊंगा। मुझे दाई नहीं चाहिए। मैं अकेला जाऊंगा।' दाई मां क्या करती? वह लुकते-छिपते उसके पीछे-पीछे जाती।

पिताजी जब घर में रहते अपने काम-काज का हिसाब-किताब करते रहते। उन्हें कागज पर कलम-स्याही से लिखते देखकर मोनिया भी ऐसा ही करता था। वह घर की जमीन पर जगह-जगह गोल-गोल लकीरें बनाने लगता। आंगन की मिट्टी वाली फर्श उसका कागज और लकड़ी का लम्बा टुकड़ा कलम! मां कहती—'मोनिया, ऐसा मत कर। जमीन खराब हो जाएगी।'

वह झट जवाब देता—'नहीं मां, नहीं बिगड़ेगी! मैं लिख रहा हूं।' इतना कहकर वह अपने काम में व्यस्त हो जाता।

जरा-सा बड़ा होते ही मोनिया घर से बाहर भागने लगा। घर में बैठना उसको तनिक भी नहीं भाता। भूख लगने पर घर आता। खा-पीकर तुरंत खेलने चला जाता। पिताजी रहते तो घर में वह थोड़ा शांत बैठता। फिर जैसे, ही पिताजी बाहर जाते घर की चीजों को उलट-पुलट करने लग जाता। ठाकुर की मूर्ति को चौकी से उतारकर खुद चौकी पर बैठ जाता।

मोनिया को सबसे ज्यादा पसंद था, मंदिर में खेलने जाना। वहां कुआं था और बगीचा भी। बगीचे में पपीते, अमरूद, आम आदि के पेड़ थे। वह अक्सर पेड़ों पर चढ़ता और पके फल तोड़ लाता। कुछ दोस्तों

में बांटता और बचे फल घर लाता। मां उसे डांटती—'इस तरह पेड़ों पर न चढ़। गिर-पड़ जाएगा, तो हाथ-पैर टूटेंगे।'

परंतु वह हँस कर चुप रह जाता।

एक दिन मोनिया पेड़ पर चढ़ ही रहा था कि उसका काला भैया आ गया। उसने पेड़ पर चढ़ते मोनिया की टांग बीच में ही पकड़ ली। फिर एक झटका मारकर नीचे गिरा दिया। मोनिया 'धप' से जमीन पर आ गया। कपड़े झाड़कर खड़ा हुआ। तभी काला भाई ने उसकी पीठ पर एक धौल जमा दी। मोनिया कुछ कहता, इसके पहले ही काला भाई वहां से चला गया।

तब वह रोता हुआ मां के पास गया। बोला—'मां, भैया ने मुझे मारा।

मां ने कहा—'जा, तू भी उसे मार दे।'

मोनिया ने पूछा—'ऐं, ये क्या बोलती हो? मैं मारूं? बड़े भाई को मारूं? मैं किसी को क्यों मारूं?' वह रोना भूल गया।

मां बोली—'बच्चे हो। आपस में लड़ाई-झगड़ा होता रहता है। भाई-बहन भी आपस में मारपीट करते हैं। अगर भाई ने मारा तो तू भी मार दे।'

मोनिया बोला—'भैया भले मार ले। मैं नहीं मारूंगा। जो मारते हैं उन्हें मारने से तू क्यों नहीं रोकती? मां, मारने वाले से कहना चाहिए कि ना मार? या कि मार खाने वाले को मारना सिखाना चाहिए?' मां चकित! उसने पूछा—'तुझे कहां से ऐसा जवाब सूझता है? कौन तुझे ऐसी बातें सिखाता है? जाने विधाता ने तेरे लिए क्या लिखा है?'

तभी पिताजी अंदर आये। उन्होंने मां की बातें सुनीं। कहा—'भागवान, तेरी कोख को यह मोनिया जरूर उजागर करेगा। यह संस्कारी है। इसका भाग्य ऊंचा है।' मोनिया चुपचाप वहां से चला गया। उस दिन भी पेड़ पर चढ़कर खूब खेल किया। लौटती में फल भी तोड़ लाया। रात को मां ने फल काटकर सबको दिये। पिताजी की थाली में भी फल का टुकड़ा रखा। उसे मुंह में रखते हुए पिताजी ने कहा—'मंदिर के पेड़ों की देखभाल पुजारी जी करते हैं। तू तोड़ने के पहले उनसे पूछ लिया कर। उन फलों पर तो गांव का भी हक है। इसलिए जो तोड़ना, उसे अपने दोस्तों के बीच बांटना जरूर। और हां, तू अकेला जाता है। हम लोगों को डर सताता है कि तू कहीं गिर-पड़ न जाए। अब तू ही सोच। तुझे क्या यह अच्छा लगता है? तू फल तोड़ने जाता है और हमारे मन में डर बैठ जाता है।' मोनिया चुपचाप सुनता रहा।

मोनिया का पेड़ पर चढ़ने का खेल जारी रहा। लेकिन उस दिन के बाद से उसे उसके भाइयों ने कभी नहीं मारा। स्कूल की पढ़ाई शुरू हुई, तो पेड़ों पर चढ़ने का खेल कम हो गया।

बड़ा होकर मोनिया ने मां की कोख को उजागर किया। उसने भारत मां की तकदीर को ऊंचा किया।

बच्चो, यह कहानी सवा सौ साल से भी अधिक पुरानी है। उस समय हमारा भारत गुलाम था। मोनिया ने खूब पढ़ाई-लिखाई की। खूब होशियार हुआ। जवान हुआ तो जाना कि अंगरेजों के शासन से जनता कराह रही है। यह देख उसका भी दिल-दिमाग बेचैन हो उठा। उसने जनता की मदद करने की ठानी। उसकी उम्र के कई लोगों का तो खून उबल उठा। उन्होंने बदले का तरीका अपनाया। जो जनता को मारता है, उसे मारो। सामने जाकर मारो या छिपकर मारो। यही उनका तरीका था। यही वे लोग जनता को सिखा रहे थे।

लेकिन, मोनिया ने मार खाने वालों को मारना सिखाने से इनकार किया। उल्टे उसने मार खाने वालों को मरना सिखाया। मरने का साहस हो तो मार खाने का डर जाता रहता है। मोनिया ने मरने से डरने की उनकी आदत छुड़ाई। उसका मंत्र था—मर-मरकर न जिओ। निर्भय बनो। जीना है तो मरना सीखो।

उसने जनता को मरना सिखाकर अंगरेजों के डंडे का जोर खत्म कर दिया। रोते-रोते जीने की बजाय जनता मौत को गले लगाने निकल पड़ी। उसका मंत्र हुआ—'करेंगे या मरेंगे। अंगरेजो, भारत छोड़ो।'

अंगरेज चले गये। देश आजाद हुआ। आजादी का यह नया तरीका सिखाने वाला मोनिया दुनिया में एक ही हुआ।

बच्चो, तुम जानते हो वह मोनिया कौन था? मोहनदास करमचंद गांधी। मोहनदास का ही बचपन का नाम मोनिया था। हां, महात्मा गांधी! हम सबके पूज्य बापू। वही थे मोनिया। ❑

(आलेख : हेमंत, चित्र : इरफान, गांधी-दर्शन)

गतिविधियां एवं समाचार

मुजफ्फरनगर में शांति सद्भावना शिविर सम्पन्न

मुजफ्फरनगर को मुहब्बत नगर बनायेंगे युवा

युवा मामले एवं खेल विभाग भारत सरकार एवं राष्ट्रीय युवा योजना, नयी दिल्ली के निदेशक एवं सर्वोदय नेता डॉ. एस. एन. सुब्बराव के निर्देश में 14 से 20 सितंबर, 2014 (सात दिवसीय) राष्ट्रीय एकता एवं शांति सदभावना युवा शिविर का आयोजन मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) में आयोजित हुआ, जिसमें भारत, नेपाल एवं इण्डोनेशिया के युवाओं की भागीदारी रही।

गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र एवं राष्ट्रीय युवा योजना के संभाग प्रभारी गौतम खण्डप्पा सहित निरुपमा हजारिका, टीकम खण्डप्पा एवं आशीष सारस्वत राष्ट्रीय एकता शांति सद्भावना शिविर में सक्रिय भागीदारी निभाकर जोधपुर लौटे। भारत के 22 राज्यों के साथ नेपाल, इण्डोनेशिया सहित विभिन्न देशों के 300 युवाओं ने हिस्सा लिया।

शिविर समापन उत्तर प्रदेश की पूर्व सांसद एवं समाजसेविका श्रीमती सुभाषिनी अली, मुजफ्फरनगर डीएम श्री कौशलराज शर्मा, पुलिस आयुक्त श्री हरिनारायण सिंह एवं इण्डोनेशिया के महात्मा गांधी आश्रम के संचालक इन्द्रा उद्यन द्वारा हुआ।

–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन
मानद सचिव, जीपीएफ, जोधपुर

सर्वोदय जगत को सहायता देने के लिए 'जैसलमेर खादी ग्रामोद्योग परिषद्' के प्रति

आभार

'सर्वोदय जगत' के प्रकाशन के लिए 10 हजार रुपये की सहायता प्रदान करने के लिए जैसलमेर जिला ग्रामोद्योग परिषद् के सभी कार्यकर्ता साथियों एवं उनके अध्यक्ष कुंदनमलजी के प्रति **'सर्वोदय जगत'** संपादकीय मंडल की ओर से हम हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। **—संपादक**

संपादक के नाम पत्र

'सर्वोदय जगत' से साभार 'ग्राम बजट' पाक्षिक पत्र, जयपुर (16 सितंबर, 2014) के अंक में भाई महादेव विद्रोही के अतीव प्रभावी लेख 'पूंजी के टीले, गरीबी के गड्ढे' जिसमें भारत की आर्थिक विषमता की एक जीवंत तस्वीर पेश की गयी है, पढ़कर जानकारी में वृद्धि हुई।

श्री भगवानदासजी मोहेश्वरी के साथ अनेकानेक सर्वोदय सम्मेलनों में सम्मिलित हो विचार सुनने और समर्पित भाव से कार्य करने की प्रेरणा मिलती रही। हरिजन बस्ती में पूज्य विनोबाजी के प्रवचन भी सुनने का सुअवसर मिला है। सन् 1947 से 1986 के मध्य सोहनलालजी मोदी के साथ कार्य करने का समय आज भी आनन्द व अमर निधि के रूप में संग्रहीत हैं।

सर्व सेवा संघ/सर्वोदय/खादी संस्थाएं एवं गांधी जीवन दर्शन से जुड़ी संस्थाएं अपने-अपने नगरों एवं निकटतम स्थानों पर व्यक्तिगत विचार स्तर, पत्र-पत्रिकाओं एवं संपर्क द्वारा जो सराहनीय एवं प्रेरक कार्य कर रही हैं, वंदनीय, सराहनीय एवं प्रेरक हैं। पर बाडमेर, बीकानेर, जैसलमेर, पाली, नागोर आदि जिलों में जो सक्रियता एवं संवाद व विचारपरक संगोष्ठियां/सम्मेलन हुआ करती थीं और उनमें जीवंतता तथा विचार मंथन द्वारा जो क्रियात्मक एवं लेखनगत पावन प्रेरणा मिलती थी, उसकी सर्वाधिक शून्यता है।

गांधी की प्रार्थना सभा, ईश प्रार्थना से अधिक मानवीय संबंधों की जीवित/सचेतन/प्रेरक/अनुकरणीय प्रार्थना सभा थी। आत्मा का आत्मा/आत्माओं का सात्विक मिलन था। मुझे लगता है उस ऊर्जा का सातत्य समाप्त-सा अधिकांश रूप से हो गया है।

धन-पद, सत्ता की उपासना में डूबा मानव समाज आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता। हिरण्यकश्यप और रावण आदि, धन, मन सुख के इन प्रेमियों को उनके अपने ही दुर्गुणों को नष्ट होना पड़ा और फकीरी धारण करने वाले कबीर, नानक, गांधी, विनोबा, जेपी, लालबहादुर शास्त्री, गोकुलभाई आदि आज भी प्रातःस्मरणीय और वंदनीय हैं। अजर-अमर हैं।

मेरा विनम्र निवेदन रहेगा कि युवा पीढ़ी को धनोन्मुखी या पदोन्मुखी न बनाकर श्रम एवं जनोन्मुखी बनाने की आवश्यकता है। आज सात्विक भोजन-वसन, गाय दूध से अधिक शराब, डीजल-पेट्रोल, टीवी और आडम्बर पर खर्च हो रहा है। अस्तु, खादी परिषदों व सर्वोदय केन्द्रों में विचार/संवाद, संगोष्ठियां प्रारम्भ कराने की कोशिश होनी चाहिए ताकि सात्विक-सेवा, सात्विक श्रम, सात्विक-धन, अन्न और मन तथा जीवन बन सके।

राजनीति के दलदल के मकड़जाल में फँसने वाले अपनी बात अभी हीन मानने पर हजारों वर्षों में जिस तरह वैदिक काल से लेकर अंग्रेजों द्वारा सँभालने से पूर्व तक कतिपय वर्ग, शिक्षा, खानपान, आचार-विचार, चिन्तन-मनन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' का आदर्श अपनाये हुए था वैसा युगानुरूप थोड़ा श्रम जिला स्तर पर पुनः जीवित रखने के प्रयास किये जायं तो इसके सद्परिणाम निकल सकते हैं।

मेरा यह निश्चित मत है कि 'सर्वोदय जगत' जैसी हिन्दी की अन्य पत्रिकाएं मंगवा कर और पढ़कर हर व्यक्ति विद्वानों के प्रेरक विचारों से अनुप्राणित एवं लाभान्वित हो जीवन को सार्थक बना सकता है।

–दीनदयाल ओझा,
साहित्य साधना सदन, जैसलमेर (राज.)

और अन्ततः
4 नवंबर : जमनालाल बजाज-जयंती

गांधी का 'पांचवां पुत्र' अस्पृश्यता निवारण का अग्रदूत

❑ अशोक मोती

'आजादी से पूर्व गांधी का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम 'अस्पृश्यता निवारण' था। बहुतेरे कांग्रेसजन गांधी के इस विचार से सहमत नहीं थे, जिसे गांधी ने 1908 में न जाने कितनी बार दुहराया था—''साधन और साध्य समानार्थक हैं।'' कांग्रेसजनों का यह विश्वास था कि साध्य शुद्ध हों तो साधन चाहे जैसे काम में लाये जा सकते हैं। इन सभी मतभेदों के कारण कांग्रेस ने गांधी द्वारा पेश किये गये कार्यक्रमों यथा अस्पृश्यता-निवारण, संपूर्ण मद्यनिषेध, हिन्दू-मुस्लिम एकता, चरखा व सौ फीसदी स्वदेशी तथा सात लाख गांवों का संगठन को कमोबेश विफल बना दिया था।

17 सितंबर, 1934 को एक वक्तव्य में गांधीजी ने स्पष्ट रूप से खासकर अस्पृश्यता के प्रश्न पर कहा—''अस्पृश्यता का प्रश्न मेरे लिए एक धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतों का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय हाथ में लिया है, उससे सत्याग्रह-आंदोलन की गति में बाधा पड़ी है।'' किन्तु जमनालाल बजाज जिन्हें गांधीजी ने 1920 के नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में अपना पांचवां पुत्र मान लिया और जो गांधीजी के अनुरूप आचरण भी करने लगे, तब तक देश की राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र खासकर अस्पृश्यता निवारण के अग्रदूत बन चुके थे। जमनालालजी बजाज के आग्रह पर ही विनोबा ने 1921 में और फिर महात्मा गांधी ने 1934 में अपना स्थायी निवास वर्धा बना लिया था, जहां के सेठ बच्छराजजी बजाज मारवाड़ी समाज के धनाढ्य व्यापारी थे।

कौन थे जमनालालजी

नागपुर से 70 मील दूर भारत देश की हृदयस्थली में अवस्थित है वर्धा। सेठ बच्छराजजी बजाज यहां के धनाढ्य व्यापारी थे। रूई का कारोबार इनका था। उनकी पत्नी थी सद्दीबाई। धन की घर में कोई कमी नहीं थी, कमी थी तो एक संतान की। सेठजी ने एक पुत्र रामधन दासजी को गोद लिया। उनकी शादी भी की। किन्तु इस घर पर विपत्ति का एक पहाड़ ही टूट पड़ा—उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। रामधनदासजी की विधवा वासंती देवी के लिए और वंश चलाने के लिए एक चार वर्ष के बच्चे को गोद लिया गया, जिसका नाम था जमनालाल। कम ही उम्र में उनकी सगाई भी जानकी देवी से कर दी गयी, लेकिन सद्दीबाई यह शादी नहीं देख पायीं। सन् 1900 में अपनी मृत्यु के पूर्व उन्होंने अपनी अंतिम इच्छा में उनके नाम उस समय जमा एक लाख रुपये से लक्ष्मी नारायण मंदिर निर्माण कराने की इच्छा जाहिर की। पत्नी की मृत्यु के बाद सेठ बच्छराजजी की रुचि धार्मिक कार्य में काफी बढ़ गयी और उन्होंने स्वर्गीय पत्नी की इच्छानुसार अपने एक निकट सहयोगी हीरालालजी फतेहपुरिया को यह जिम्मेवारी सौंप दी। सेठ बच्छराजजी तथा उनके पुत्र जमनालालजी और उनकी पत्नी जानकी देवी पर एक ही धुन सवार हो गयी—यह मंदिर किस तरह एक अनूठा मंदिर बन सके। बच्छराजजी के जीवन में आखिर 7 फरवरी, 1908 वसंत पंचमी का शुभ दिन आ ही गया, जिस दिन मूर्तियों की प्राण-प्रतिष्ठा की गयी और मंदिर का नाम 'लक्ष्मी नारायण मंदिर' रखा गया। किन्तु प्राण-प्रतिष्ठा संपन्न होने के साढ़े चार माह बाद ही बच्छराजजी का निधन हो गया।

अछूतों का मंदिर प्रवेश कराने के सूत्रधार

जमनालालजी बजाज शुरू से ही बड़े संस्कारी थे और 1920 में गांधीजी द्वारा उन्हें अपना पांचवां पुत्र मान लिये जाने के बाद उन्होंने गांधीजी के आचरणों को अपने जीवन में उतारने को जीवन का ध्येय बना लिया। घर में परदा हटा दिये गये, पूर्ण खादी का प्रवेश घर में हो गया, हर काम में सादगी बरती जाने लगी। सदियों से समाज में व्याप्त कुरीतियों, खासकर छुआछूत, जात-पांत, ऊँच-नीच की भावना से जमनालालजी अत्यन्त दुखी और आहत होने लगे। उन्होंने इन बातों के पक्ष में अपनी राय खोलकर लोगों के सामने रखना प्रारंभ कर दिया। उनका यह दृढ़ निश्चय था कि अस्पृश्यों को सार्वजनिक कुओं से पानी लेने की छूट मिलनी चाहिए। नव-निर्मित लक्ष्मीनारायण मंदिर में धर्मशाला की व्यवस्था सनातनी ट्रस्टियों के हाथों में थी, जो इन बातों के लिए सहर्ष तैयार हो ही नहीं सकते थे; किन्तु उन्होंने अपना प्रयास निरंतर जारी रखा, आखिरकार ट्रस्टी 1927 में कुएं सबके लिए खोलने पर राजी हो गये। अब जमनालालजी का एक बड़ा मकसद था, मंदिर में अछूतों को प्रवेश दिलाना। ट्रस्टियों का मानना था कि इससे तो धर्म ही डूब जायेगा। किन्तु जमनालालजी के दृढ़ विश्वास ने फिर रंग दिखाया, कट्टर सनातनियों का प्रबल विरोध इस बात पर और बढ़ गया जब उन्होंने ट्रस्टियों से मंदिर के द्वार अस्पृश्यों के लिए खोलने के प्रस्ताव पर भी सहमति प्राप्त कर ली। सनातनियों ने मंदिर के सामने सत्याग्रह करने के निश्चय कर लिया। किन्तु जमनालालजी मुस्कुराते रहे। अंततः 17 जुलाई 1928 को सुबह 8 बजे भजन-कीर्तन करती अछूतों की टोली श्री परांजपे के नेतृत्व में मंदिर में प्रवेश किया। लगभग 12 बजे दिन तक दो हजार से अधिक अस्पृश्यों ने लक्ष्मी नारायण के दर्शन किये। रात 10 बजे तक मंदिर में लोग पूजा-अर्चना करते रहे और खुशियां मनाते रहे। जमनालालजी बजाज अस्पृश्यों को मंदिर में देख भाव-विह्वल हो उठे और कहा—''एक ज्वाला जो पिछले तीन वर्षों से मेरे दिल में जल रही थी वह आज शांत हो गयी। यह देश का पहला मंदिर था, जिसे दलितों के लिए खोला गया।'

गांधीजी ने इस क्रांतिकारी कदम की भूरि-भूरि प्रशंसा की—''मैं सेठ जमनालालजी बजाज तथा उनके दूसरे साथी ट्रस्टियों को इस साहस के लिए बधाई देता हूं और आशा करता हूं कि इस उदाहरण का अनुकरण पूरे भारत में किया जायेगा।'' *(यंग इंडिया, 20 जुलाई, 1928)*

दरअसल यह गांधी के पांचवें पुत्र जमनालाल बजाज ने हरिजनों को मंदिर में प्रवेश दिलाने का सूत्रपात कर बापू के प्रति अपनी निष्ठा दिखा दी और इस देश में अस्पृश्यता-निवारण के अग्रदूत बन गये। ❑

कुमारन् आशान की कविताएं

प्रार्थना रात की

खेलकर थका बच्चा
जैसे ताकता है माँ की ओर
हे ईश्वर, मेरे सारे काम निपटाने के बाद
रात को तुम्हें ताकता हूँ

हे ईश्वर, अपनी ऊर्जा खत्म होने पर
मैं देह और प्राण छोड़
धरती पर गिरते फूल-सा
तुम्हारे पास पहुँचूँगा

अँधेरे में दयालु बन
मेरे संग रहो
तुम्हारी कृपा मुझ पर रहे कि
मैं कल सुबह उठ पाऊँ
हे ईश्वर, दुनिया को समृद्ध बनाओ
तुम अपनी दया से मुझे भर दो
पीड़ा दूर हों
और मेरे शत्रु भी खुश रहें
दीया, चाँद और तारों
का कोई मतलब नहीं
हे ईश्वर, तुम ही इस अँधेरी नींद में
एक मात्र आशा हो

'आज कल इतनी घोर हिंसा
चल रही है कि उसमें से
अहिंसा प्रकट होने के लिए
मेरे जैसे बहुतों के बलिदान
की आवश्यकता रह जायेगी।'

नन्हीं चिड़िया

नन्हीं चिड़िया यह तो बताओ
क्या तुम हमेशा खेलती रहती हो
क्या तुम्हें कोई पीड़ा नहीं है
क्या तुम कोई स्कूल नहीं जाती
जहां उड़ना सिखाया जाता है

पेड़ों पर बसेरा लेती हो आराम से
गुदगुदा देने पर गाती हो तुम
मनपसंद ऊंचाइयों पर उड़ती हो
जो भी हो, क्या मैं यह सब कर पाऊंगा

झूले में बैठकर
झूलते हुए मुझे ऊर्जा मिलती है
तुम आसमान में कहीं भी
उड़ सकती हो
इस आनन्द को कैसे सँभाल पाती हो?

प्यारे स्वर्गीय प्राणी
तुम्हारी हरकतें मुझे मोहित करती हैं
मुझे पढ़ाई करनी है
मैं नन्हीं-सी चिड़िया क्यों नहीं बना?

मैं बड़े जोर से तुम्हारे पास आ रही हूं
रोना नहीं
सिसकियां भर रहे हो तुम
रोना मत आ रही हूं मैं
यदि गुलाब के कांटे से
तुम्हारी उँगलियों को चोट लगी है
यदि आम के पेड़ से तुम गिर पड़े
और घुटनों में चोट लगी है

अगर दीवार पर टँगे चित्र को
उतारने पर माथे पर चोट लग आए
अगर बिस्तर पर लड़खड़ाकर गिर पड़ो
और तुम्हारे गाल पर चोट लग जाये।

डरो मत!
मैं तुम्हें नहीं पीटूँगी
रोओ मत!
तुम्हारा दर्द फुर्र हो जायेगा
तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम,
ये सारे हादसे
बच्चों के लिए आभूषण हैं

मां ने यह सब कह
उसे प्यार से चूमा
तो वह हँसने लगा
बादलों से निकले चाँद-सा ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार, कार्य.संपादक : अशोक मोती। छपी प्रतियाँ : 1450